

पंचम संस्करण



की प्रस्तुति

# न्यायाश्रमा

न्याय की किरण



ए.आई. असिस्टेड लीगल ट्रांसलेशन एडवाइजरी, ई-एचसीआर एवं आईएलआर कमेटी, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा लोकार्पित

ए.आई. असिस्टेड लीगल ट्रांसलेशन एडवाइज़री, ई-एचसीआर  
एवं आईएलआर कमेटी, इलाहाबाद उच्च न्यायालय  
द्वारा प्रस्तुत

## न्यायाभा-न्याय की किरण

(इलाहाबाद उच्च न्यायालय की त्रैमासिक ई-पत्रिका)



संरक्षक

माननीय न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली  
(मुख्य न्यायमूर्ति, इलाहाबाद उच्च न्यायालय)



माननीय न्यायमूर्ति  
श्री अजित कुमार  
अध्यक्ष



माननीय न्यायमूर्ति  
श्री सौरभ श्याम शमशेरी  
सदस्य



माननीय न्यायमूर्ति  
श्री विक्रम डी. वौहान  
सदस्य



माननीय न्यायमूर्ति  
श्री जितेन्द्र कुमार सिन्हा  
सदस्य

ए.आई. असिस्टेड लीगल ट्रांसलेशन एडवाइज़री, ई-एचसीआर  
एवं आईएलआर कमेटी, इलाहाबाद उच्च न्यायालय

# ए.आई.कमेटी

भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति डॉ. डी. वाई. चंद्रचूड़ ने भारत के जनमानस को उनकी क्षेत्रीय भाषा में निर्णय उपलब्ध कराकर उनमें विधिक जागरूकता फैलाने के लिए, 23 जनवरी, 2023 को भारत के सभी उच्च न्यायालयों के माननीय मुख्य न्यायमूर्तिगण को पत्र भेज कर, प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक ए. आई. कमेटी के गठन का निर्देश दिया, जिसके अनुपालन में उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में ए. आई. असिस्टेड लीगल ट्रांसलेशन एडवाइजरी कमेटी, उच्च न्यायालय का गठन 25 जनवरी, 2023 को हुआ।

कमेटी का प्रथम गठन माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी, अध्यक्ष व माननीय न्यायमूर्ति श्री मोहम्मद फैज आलम खान, सदस्य के रूप में हुआ। 29 मार्च, 2023 को माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला, अध्यक्ष व माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव, सदस्य के रूप में कमेटी को पुनर्गठित किया गया। 09 मई, 2023 को माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार, अध्यक्ष एवं माननीय न्यायमूर्ति श्री मोहम्मद फैज आलम खान, सदस्य के रूप में कमेटी का पुनर्गठन हुआ। इस पूरी प्रक्रिया अवधि में ही, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद व लखनऊ पीठ, लखनऊ में स्वतंत्र सुवास प्रकोष्ठ का गठन 16 अगस्त, 2023 को हुआ। दिनांक 26 फरवरी, 2024 को भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति डॉ. डी. वाई. चंद्रचूड़ के निर्देशानुसार ई-इलाहाबाद उच्च न्यायालय निर्णय-पत्रिका (e-AHCR) के प्रकाशन हेतु 28 फरवरी, 2024 को माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी. चौहान को माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा उक्त कमेटी के तीसरे सदस्य के रूप में नामित किया गया। दिनांक 25 जनवरी, 2025 को माननीय न्यायमूर्ति श्री मोहम्मद फैज आलम खान की सेवानिवृत्ति के बाद 02 सदस्यीय कमेटी कार्यरत रही। तदोपरान्त दिनांक 06 अगस्त, 2025 को माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के आदेश द्वारा कमेटी का पुनर्गठन, उच्च न्यायालय ए. आई. असिस्टेड लीगल ट्रांसलेशन एडवाइजरी एवं ई-लॉ रिपोर्ट कमेटी तथा इंडियन लॉ रिपोर्टर व उसके ऑनलाइन संस्करण के प्रकाशन, वितरण एवं विक्रय हेतु समिति (संक्षेप में ए. आई. असिस्टेड लीगल ट्रांसलेशन एडवाइजरी, ई-एचसीआर एवं आईएलआर कमेटी, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद) के नाम से किया गया, जिसमें वर्तमान में माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार, अध्यक्ष व माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी, माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी. चौहान एवं माननीय न्यायमूर्ति श्री जितेंद्र कुमार सिन्हा, सदस्य के रूप में नामित हैं।

सुवास प्रकोष्ठ, उक्त कमेटी के निर्देशन में सुवास प्रकोष्ठ अब तक उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के 66,000 से अधिक निर्णयों का अनुवाद कराकर ई-इलाहाबाद उच्च न्यायालय निर्णय पत्रिका में प्रकाशित कर चुका है। साथ ही उच्चतम न्यायालय के उत्तर प्रदेश राज्य से उत्पन्न लगभग 302 निर्णयों का अनुवाद कराकर प्रकाशित किया जा चुका है। इलाहाबाद इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने सभी न्यायालयों द्वारा १७ मार्च २०२६ से निर्मित किए जाने वाले नॉन-एफआर अंतिम निर्णय/आदेशों (तीन पृष्ठ या अधिक) का अनुवाद शुरू करेगा, इसके साथ ही इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एफआर निर्णय और उत्तर प्रदेश, मुंबई हाई कोर्ट और आंध्र प्रदेश हाई कोर्ट से उत्पन्न होने वाले सुप्रीम कोर्ट के मामलों के निर्णयों का भी अनुवाद किया जा रहा है।

माननीय उच्चतम न्यायालय की ए. आई. असिस्टेड लीगल ट्रांसलेशन एडवाइजरी कमेटी के निरंतर मार्गदर्शन एवं माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद की ए. आई. असिस्टेड लीगल ट्रांसलेशन एडवाइजरी, ई-एचसीआर एवं आईएलआर कमेटी के सघन पर्यवेक्षण और दिशानिर्देशों के फलस्वरूप सुवास प्रकोष्ठ द्वारा ई-निर्णय पत्रिका, त्रैमासिक ई-पत्रिका, ई-पुस्तिका स्वरूप में ऐतिहासिक निर्णयों की श्रृंखला, इत्यादि का प्रकाशन किया जा रहा है।

## संपादकीय

“प्रिय पाठकगण,”

यह हमारे लिए अत्यंत हर्ष का विषय है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के सुवास प्रकोष्ठ द्वारा प्रकाशित गैर-न्यायिक त्रैमासिक ई-पत्रिका 'न्यायाभा - न्याय की किरण' की पंचम आवृत्ति पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। इस ई-पत्रिका के प्रथम चार संस्करणों को मिली प्रसंशा और प्रोत्साहन ने हमें इस संस्करण को श्रेष्ठतर बनाने के लिए प्रेरित किया। इस संस्करण में विधि क्षेत्र के विविध लेखों, संस्मरणों, स्मृतियों आदि के साथ-साथ अद्यतन मूलभूत विषयों को समाहित किया गया है, जिससे यह पत्रिका विधि विद्यार्थियों, अधिवक्ताओं एवं आम जनमानस के लिए अधिक उपयोगी बन सके।

गैर न्यायिक क्षेत्र के लेखों, संस्मरणों, स्मृतियों आदि को समर्पित, इस ई-पत्रिका के पंचम संस्करण में महत्वपूर्ण विषयों 'न्यायिक निर्वचन और हस्तक्षेप द्वारा मौलिक अधिकारों का विस्तार और संरक्षण, विधायिका और न्यायपालिका के बीच क्षेत्राधिकार संबंधी संघर्ष, कानूनी तंत्र और प्रक्रियाएँ: कथित चिकित्सीय लापरवाही के संदर्भ में भारतीय विधि और अदालती निर्णयों की समीक्षा, आरक्षण नीति पर पुनर्विचार की आवश्यकता, भारत में बलात्क. 1R-विरोधी कानूनों की यात्रा, भारत की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल द्वारा कन्फेडरेशन ऑफ इंडियन बार द्वारा आयोजित न्यायिक सुधारों पर संगोष्ठी के उद्घाटन के अवसर पर दिया गया भाषण, विधिशास्त्र के स्कूल: इतिहास में उनके स्थान और उनकी वर्तमान व्यवस्था' आदि लेखों को समेकित किया गया है। इसके अतिरिक्त पाठकगणों के लिए चतुर्थ तिमाही के ए.एफ.आर. निर्णयों की सूची (अक्टूबर 2025 से दिसंबर 2025 तक) एवं चतुर्थ तिमाही के पूर्ण पीठ के निर्णयों की सूची (अक्टूबर 2025 से दिसंबर 2025) का प्रकाशन किया गया है।

इस पंचम संस्करण की तैयारी में विशेषज्ञों एवं पाठकों की टिप्पणियों का विशेष ध्यान रखा गया है। हमें आशा है कि यह संस्करण भी अपने पूर्व संस्करणों की तरह पाठकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरेगा। अंत में, उन सभी पाठकों, न्यायविदों एवं सहयोगियों का आभार, जिनके सहयोग एवं सुझावों ने इस कृति को समृद्ध किया। आप अपने सुझाव हमें ई-मेल के माध्यम से [editorialboard.suvascell@gmail.com](mailto:editorialboard.suvascell@gmail.com) पर भेज सकते हैं, हम इस पत्रिका को उत्कृष्ट बनाने के लिए सतत प्रयासरत हैं।

धन्यवाद  
संपादक मंडल

## अस्वीकरण

पत्रिका में प्रकाशित अंशों/लेखों को ए.आई. तकनीक का प्रयोग करके अनुवादित किया गया है।

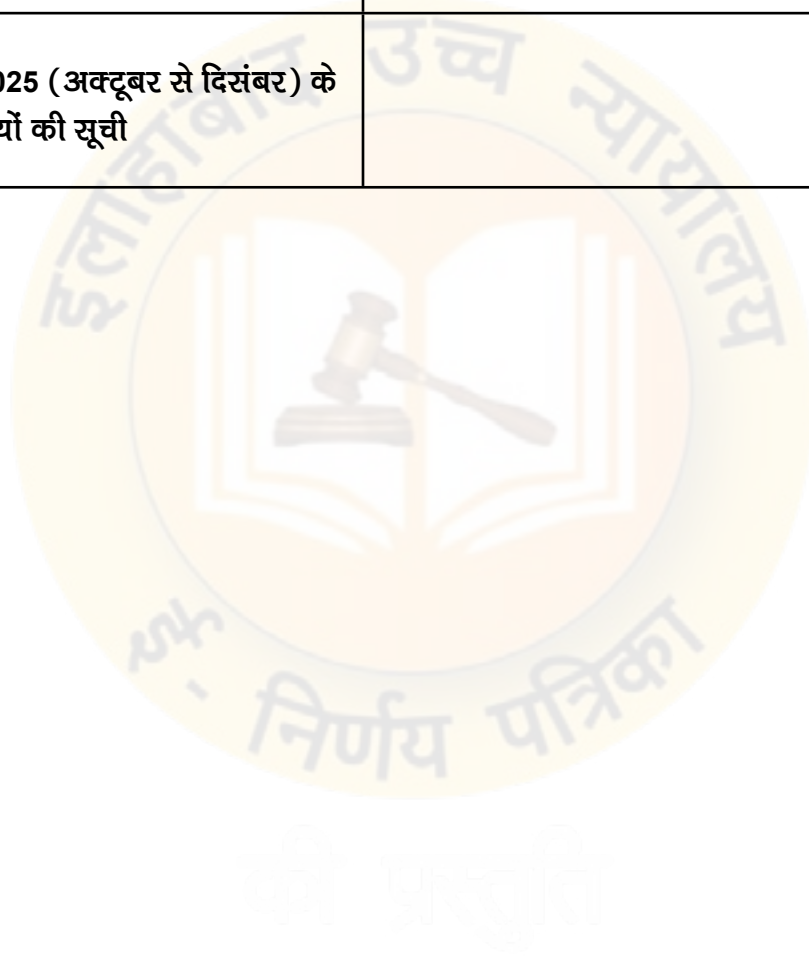
अनुवादित संस्करण में पूर्ण एवं उचित जानकारी प्रदान करने के लिए सतर्कता और सावधानी बरती गई है। फिर भी, गलत या अशुद्ध अनुवाद अथवा अनुवादित पाठ की अंतर्वस्तु में, किसी भी त्रुटि, चूक या विसंगति के लिए उच्च न्यायालय, इलाहाबाद एवं उसकी लखनऊ खंडपीठ की रजिस्ट्री/सुवास प्रकोष्ठ, उत्तरदायी नहीं होगी।

अगर आप मूल लेखों को पढ़ना चाहते हैं तो आपकी सुविधा के लिए उनका स्रोत अनुक्रमणिका में मूल स्रोत के अंतर्गत दिया गया है।

## अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषयवस्तु	मूल स्रोत	पृष्ठ संख्या
2.	न्यायिक निर्वचन और हस्तक्षेप द्वारा मौलिक अधिकारों का विस्तार और संरक्षण द्वारा सोली जे. सोराबजी	<a href="https://nujlawreview.org/wp-content/uploads/2016/12/Soli-Sorabjee.pdf?utm">https://nujlawreview.org/wp-content/uploads/2016/12/Soli-Sorabjee.pdf?utm</a>	08
3.	विधायिका और न्यायपालिका के बीच क्षेत्राधिकार संबंधी संघर्ष द्वारा डॉ. ए. के. घोषाल, एम.ए., पीएच.डी. (लंदन)	The Indian Journal of Political Science , January–March, 1965, Vol. 26, No. 1 (January– March, 1965), pp. 64-74 Stable URL: <a href="https://www.jstor.org/stable/41854061">https://www.jstor.org/ stable/41854061</a>	16
4.	कानूनी तंत्र और प्रक्रियाएँ: कथित चिकित्सीय लापरवाही के संदर्भ में भारतीय विधि और अदालती निर्णयों की समीक्षा	<a href="https://nmji.in/legal-mechanisms-and-procedures-in-alleged-medical-negligence-a-review-of-indian-laws-and-judgments/?utm">https://nmji.in/legal-mechanisms-and- procedures-in-alleged-medical-negli- gence-a-review-of-indian-laws-and- judgments/?utm</a>	24
5.	आरक्षण नीति पर पुनर्विचार की आवश्यकता द्वारा न्यायमूर्ति पंकज मिथल	<a href="https://theprint.in/india/reservation-policy-requires-relook-justice-pankaj-mithal/2203198/?utm">https://theprint.in/india/reservation-pol- icy-requires-relook-justice-pan- kaj-mithal/2203198/?utm</a>	30
6.	भारत में बलात्कार-विरोधी कानूनों की यात्रा द्वारा - कृष्णदास राजगोपाल	THE HINDU Newspaper dated 18.11.2025	31
7.	भारत की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल द्वारा कन्फेडरेशन ऑफ इंडियन बार द्वारा आयोजित न्यायिक सुधारों पर संगोष्ठी के उद्घाटन के अवसर पर दिया गया भाषण	<a href="https://presidentofindia.nic.in/smt-pratibha-devisingh-patil/speeches/speech-her-excellency-president-india-shrimati-pratibha-55">https://presidentofindia.nic.in/smt-prat- ibha-devisingh-patil/speeches/ speech-her-excellency-president-india-shri- mati-pratibha-55</a>	33
8.	विधिशास्त्र के स्कूल: इतिहास में उनके स्थान और उनकी वर्तमान व्यवस्था द्वारा नाथन आइजैक्स	Harvard Law Review , Jan., 1918, Vol. 31, No. 3 (Jan., 1918), pp. 373-411 Stable URL: <a href="https://www.jstor.org/stable/1327078">https://www.jstor.org/ stable/1327078</a>	36

9.	चतुर्थ तिमाही 2025 (अक्टूबर से दिसंबर) के ए.एफ.आर. निर्णयों की सूची		49
10.	चतुर्थ तिमाही 2025 (अक्टूबर से दिसंबर) के पूर्ण पीठ के निर्णयों की सूची		81



# न्यायिक निर्वचन और हस्तक्षेप द्वारा मौलिक अधिकारों का विस्तार और संरक्षण

सोली जे. सोराबजी

भारतीय संविधान के भाग III में समाहित मौलिक अधिकारों का अध्याय, द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद प्रचलित अंतर्राष्ट्रीय भावनाओं के प्रति एक लोकप्रिय रियायत के रूप में शामिल नहीं किया गया था। यह हमारे स्वतंत्रता सेनानियों और संस्थापक पूर्वजों की प्रबल इच्छा और निरंतर मांग थी कि भारत के भविष्य के संविधान में भारत के लोगों के लिए मौलिक पात्रताओं की प्रत्याभूति होनी चाहिए। यह मांग 1895 के भारत के संविधान विधेयक में की गई थी, जिसे लोकप्रिय रूप से स्वराज विधेयक के रूप में जाना जाता है, जो लोकमान्य तिलक से प्रेरित था।

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1918 में बंबई में आयोजित अपने विशेष सत्र में मांग की कि नए भारत सरकार अधिनियम में "भारत के लोगों के अधिकारों की घोषणा" होनी चाहिए।
2. श्रीमती एनी बेसेंट के कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल, जिसे 1925 में राजनीतिक दलों के राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा अंतिम रूप दिया गया था, ने भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए मौलिक अधिकारों की एक विशिष्ट घोषणा पर बल दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1927 के अपने मद्रास सत्र में घोषणा की कि भविष्य के संविधान के आधार में मौलिक अधिकारों की घोषणा होनी चाहिए।
3. पुनः 1928 में, मोतीलाल नेहरू समिति ने अपनी रिपोर्ट में भारत के भविष्य के संविधान के हिस्से के रूप में मौलिक अधिकारों को अपनाने की दृढ़ता से सिफारिश की।
4. यह उल्लेखनीय है कि रिपोर्ट में, मौलिक अधिकारों के अध्याय में कहा गया था कि, "[प्रत्येक] नागरिक को बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट का अधिकार होगा। युद्ध या विद्रोह के मामले में केंद्रीय विधायिका के एक अधिनियम द्वारा या, यदि विधायिका सत्र में नहीं है, तो सपरिषद गवर्नर-जनरल द्वारा ऐसे अधिकार को निलंबित किया जा सकता है, और ऐसे मामले में, वह विधायिका को जल्द से जल्द अवसर पर निलंबन की रिपोर्ट करेगा ताकि वह उचित कार्यवाही कर सके।"

मोतीलाल नेहरू को यह जानकर गहरा आघात लगता कि हमारे उच्चतम न्यायालय ने ए.डी.एम. जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला में 28 अप्रैल, 1976 को दिए गए अपने निर्णय में बहुमत से यह व्यवस्था दी कि बंदी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार वस्तुतः नजरबंदी के सिद्ध दुर्भावनापूर्ण आदेशों के संबंध में भी उपलब्ध नहीं था। यह निर्णय उस समय दिया गया था जब न तो युद्ध था और न ही विद्रोह। 1931 में, अपने कराची सत्र में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने इस संकल्प को दोहराया कि भारत में किसी भी भविष्य के संवैधानिक ढांचे के लिए मौलिक अधिकारों की लिखित प्रत्याभूति आवश्यक है। मौलिक अधिकारों का विषय सप्रू समिति (1944-45) के विचार-विमर्श में प्रमुखता से शामिल था। सप्रू समिति की यह दृढ़ राय थी कि भारत की विशिष्ट परिस्थितियों में, मौलिक अधिकार न केवल अल्पसंख्यकों के लिए एक आश्वासन और प्रत्याभूति के रूप में आवश्यक थे, बल्कि विधायिकाओं, सरकारों और न्यायालयों के लिए आचरण का एक मानक निर्धारित करने के लिए भी आवश्यक थे।

26 जनवरी, 1950 को भारत एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य बना, जैसा कि भारत के संविधान द्वारा परिकल्पित किया गया था, जिसे संविधान सभा द्वारा 26 नवंबर, 1949 को अपनाया गया था। भारत के संविधान का भाग III - सबसे अधिक चर्चित और आलोचना का पात्र रहा हिस्सा - मौलिक अधिकारों की एक विस्तृत श्रृंखला की प्रत्याभूति देता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें

राज्य और उसके उपकरणों के साथ-साथ कुछ मामलों में निजी पक्षों के विरुद्ध भी न्यायिक रूप से प्रवर्तनीय बनाया गया था। भारतीय संविधान द्वारा प्रत्याभूत मौलिक अधिकार मोटे तौर पर कुछ श्रेणियों में आते हैं। अनुच्छेद 14 से 16 अपनी कई अभिव्यक्तियों में समता का अधिकार प्रदान करते हैं और केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का निषेध करते हैं। अनुच्छेद 19 भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण सम्मेलन की स्वतंत्रता जैसी बुनियादी स्वतंत्रताओं की प्रत्याभूति देता है; संघ या यूनियन बनाने की स्वतंत्रता; भारत के किसी भी हिस्से में स्वतंत्र रूप से घूमने और रहने तथा बसने की स्वतंत्रता; और अपने धर्म का पालन करने और उसका प्रचार करने, या किसी भी व्यवसाय, व्यापार या व्यवसाय को करने की स्वतंत्रता। अनुच्छेद 19(1)(च) और 31, जो संपत्ति के अधिकारों की प्रत्याभूति देते थे, संविधान (44वें) संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा 20 जून, 1979 से प्रभावी रूप से हटा दिए गए थे।

अनुच्छेद 20 भूतलक्षी दण्डिक विधियों, दोहरे दण्ड और आत्म-अभिशंसन के विरुद्ध संवैधानिक प्रत्याभूति प्रदान करता है। अनुच्छेद 21 प्रदान करता है कि किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा वंचित नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 23 और 24 शोषण के विरुद्ध प्रत्याभूति प्रदान करते हैं जैसे मानव तस्करी और बलात् श्रम। अनुच्छेद 25 से 28 अंतःकरण की स्वतंत्रता और धर्म की स्वतंत्रता से संबंधित हैं। अनुच्छेद 29 और 30 अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को संरक्षित करने और अपनी पसंद के शिक्षण संस्थानों की स्थापना और प्रशासन करने के अधिकारों की प्रत्याभूति देते हैं। प्रेस की स्वतंत्रता को न्यायिक रूप से 'लोकतंत्र की संविदा की मंजूषा' और एक लोकतांत्रिक राज्य में सबसे अनमोल स्वतंत्रताओं में से एक के रूप में वर्णित किया गया है। दुनिया का हर संविधान जिसमें अधिकारों का विधेयक है, गर्व से प्रेस की स्वतंत्रता की घोषणा करता है। फिर भी यह हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों के भाग III में स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है। इसका स्पष्टीकरण क्या हो सकता है? संविधान सभा की बहसों की कार्यवाही से पता चलता है कि संस्थापक पूर्वजों का मानना था कि प्रेस की स्वतंत्रता भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति में निहित थी और इसे विशेष रूप से उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं थी।

हमारे उच्चतम न्यायालय ने एक से अधिक निर्णयों में संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) से प्रेस की स्वतंत्रता का निष्कर्ष इस आधार पर निकाला है कि यह उक्त प्रत्याभूति में अंतर्निहित है। इस प्रकार, रचनात्मक न्यायिक निर्वचन द्वारा, प्रेस की स्वतंत्रता को हमारे संविधान में एक मौलिक अधिकार का संवैधानिक दर्जा दिया गया है। भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति से प्रेस की स्वतंत्रता का निष्कर्ष निकालने के बाद, उच्चतम न्यायालय ने प्रेस को इस ठोस सिद्धांत पर प्रभावी संरक्षण प्रदान किया है कि मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंधों का संकीर्ण अर्थ लगाया जाना चाहिए और अनुमानतः या निहितार्थ द्वारा उन्हें बढ़ाया नहीं जाना चाहिए। संविधान का अनुच्छेद 19(2) प्रतिबंधों के विशिष्ट शीर्षों को सूचीबद्ध करता है जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रयोग पर और फलस्वरूप प्रेस की स्वतंत्रता पर लगाए जा सकते हैं। "सामान्य जनता के हित" का शीर्षक, जो अन्य मौलिक अधिकारों के संबंध में निर्दिष्ट है, अनुच्छेद 19(2) में उल्लेखित नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने सकल पेपर्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम भारत संघ के अपने ऐतिहासिक निर्णय में व्यवस्था दी कि सामान्य जनता के हित में प्रेस की स्वतंत्रता को व्यवसाय करने की स्वतंत्रता के विपरीत कम नहीं किया जा सकता है। केवल वे ही प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं जिनकी अनुमति अनुच्छेद 19 का खंड (2) देता है और कोई अन्य नहीं।

एक अन्य प्रसिद्ध निर्णय, बेनेट कोलमैन एंड कंपनी बनाम भारत संघ में, उच्चतम न्यायालय प्रेस के बचाव में आया। इसने माना कि प्रेस की स्वतंत्रता समाचार पत्रों को प्रसार की मात्रा तय करने का अधिकार देती है, और स्वतंत्रता प्रसार और सामग्री दोनों में निहित है। न्यायालय ने आगे व्यवस्था दी कि समाचार पत्र मुद्रण वितरण की आड़ में एक समाचार पत्र मुद्रण नीति समाचार पत्रों के विकास और प्रसार को नियंत्रित नहीं कर सकती है। इसके अतिरिक्त, विज्ञापनों पर प्रतिबंध प्रेस की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा।

प्रेस की स्वतंत्रता के प्रति उच्चतम न्यायालय की चिंता 1986 में इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स बनाम भारत संघ के मामले में अपने चरम पर पहुँच गई। उस मामले में, समाचार पत्र मुद्रण पर सीमा शुल्क की भारी लेवी को चुनौती दी गई थी। न्यायालय ने देखा कि

यद्यपि समाचार पत्रों को करों और अन्य राजकोषीय बोझों के भुगतान से कोई उन्मुक्ति प्राप्त नहीं थी, समाचार पत्र मुद्रण पर सीमा शुल्क जैसे कर का आरोपण ज्ञान पर आरोपण है। न्यायालय ने इस दलील को स्वीकार कर लिया कि समाचार पत्र मुद्रण पर एक राजकोषीय लेवी न्यायिक समीक्षा के अधीन होगी। इसने माना कि समाचार पत्र मुद्रण पर कर के मामले में, एक विशिष्ट और ध्यान देने योग्य बोझ को दिखाना पर्याप्त हो सकता है जो सीधे कर के कारण होता है। उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णयों में प्रेस की स्वतंत्रता के दायरे का उदार निर्वचन किया है और इसे एक व्यापक विषय-वस्तु दी है।

विदेश यात्रा करने और अपने देश लौटने के अधिकार को एक अमूल्य मानवाधिकार माना जाता है। हमारा संविधान स्पष्ट रूप से इस अधिकार की प्रत्याभूति नहीं देता है। उच्चतम न्यायालय ने सतवंत सिंह साहनी बनाम डी. रामरत्नम के अपने ऐतिहासिक निर्णय में संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित "दैहिक स्वतंत्रता" अभिव्यक्ति से इस अधिकार को प्रतिपादित किया। न्यायालय ने बॉम्बे उच्च न्यायालय के इस दृष्टिकोण को स्वीकार किया कि अनुच्छेद 21 में प्रयुक्त 'दैहिक स्वतंत्रता' शब्द में विदेश यात्रा करने और भारत लौटने का अधिकार शामिल है।

यद्यपि संविधान में क्रूर, अमानवीय और अपमानजनक दण्ड या व्यवहार को प्रतिबंधित करने वाला कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है, न्यायालय ने प्रस्तावना के संदर्भ में और अनुच्छेद 14, जो भेदभाव और मनमानी कार्यवाही को रोकता है, के साथ अनुच्छेद 21 के अपने व्यापक निर्वचन द्वारा इस अधिकार को विकसित किया है। एक अन्य ऐतिहासिक निर्णय में न्यायालय ने व्यवस्था दी है कि चौदह वर्ष की आयु तक शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21 के भंडार से निकलने वाला एक मौलिक अधिकार है।

निजता, जो अकेले रहने के अधिकार की अवधारणा को मूर्त रूप देती है, सभ्य समाज द्वारा सबसे अधिक संजोया गया अधिकार है, जिसका मौलिक अधिकारों के भाग III में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है। ताज़ा मानवाधिकारों को प्रतिपादित करने की न्यायिक तकनीक का एक उत्कृष्ट उदाहरण अमेरिकी उच्चतम न्यायालय द्वारा ग्रिसवोल्ड बनाम कनेक्टिकट में अपनाया गया था, जिसे लोकप्रिय रूप से 'गर्भनिरोधक मामले' के रूप में जाना जाता है। कनेक्टिकट के सामान्य कानून, 1958 की धाराएं 53-32 और 54-196 के माध्यम से, कनेक्टिकट में गर्भनिरोधकों के उपयोग को एक आपराधिक अपराध बना दिया गया था। कानून के तहत, पुलिस को "गर्भनिरोधकों के उपयोग के संकेतों के लिए वैवाहिक शयनकक्षों के पवित्र परिसर की तलाशी" लेने के लिए शयनकक्ष में घुसने का अधिकार दिया गया था। यह तर्क दिया गया था कि कानून ने निजता के अधिकार का उल्लंघन किया है। अमेरिकी अधिकारों के विधेयक में निजता का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं है। फिर भी उस निर्णय में न्यायमूर्ति डगलस द्वारा इस तर्क पर निजता का निष्कर्ष निकाला गया कि "अधिकारों के विधेयक में विशिष्ट प्रत्याभूतियों में उपछायाएं (पैनम्ब्रा) होती हैं, जो उन प्रत्याभूतियों से निकलने वाले विकिरणों से बनती हैं जो उन्हें जीवन और सार देने में मदद करती हैं। विभिन्न प्रत्याभूतियाँ निजता के क्षेत्र बनाती हैं"।

इसी तरह की न्यायिक तकनीक अपनाते हुए, हमारे उच्चतम न्यायालय ने आर. राजगोपाल बनाम तमिलनाडु राज्य के अपने निर्णय में संविधान के अनुच्छेद 21 से निजता को एक मौलिक अधिकार के रूप में निष्कर्ष निकाला है। यह इस आधार पर आधारित है कि कुछ अघोषित अधिकार स्पष्ट रूप से सूचीबद्ध प्रत्याभूतियों में निहित हैं।

भारत में कानूनी सहायता प्रदान करने वाला कोई केंद्रीय विधान नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने 1978 में एम.एच. होसकोट बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में अपने निर्णय में माना कि गरीबों और जरूरतमंदों को मुफ्त कानूनी सेवाएं अनुच्छेद 21 में किसी भी 'उचित, निष्पक्ष और न्यायपूर्ण' प्रक्रिया का एक अनिवार्य तत्व है। न्यायालय ने व्यवस्था दी कि, "(1) जहाँ कैदी निर्धनता या बाहरी दुनिया से संपर्क न होने जैसी उचित आधारों पर वकील नियुक्त करने में असमर्थ है, वहाँ न्यायालय, यदि मामले की परिस्थितियाँ, दण्ड की गंभीरता और न्याय के हित में आवश्यक हो, तो कैदी के बचाव के लिए सक्षम वकील नियुक्त करेगा, बशर्ते कि वह पक्ष उस वकील पर आपत्ति न करे, (2) वह राज्य जिसने कैदी पर मुकदमा चलाया और उस प्रक्रिया को गति दी जिसने उसे उसकी स्वतंत्रता से वंचित किया, वह नियुक्त वकील को ऐसी राशि का भुगतान करेगा जो न्यायालय न्यायसंगत रूप से निर्धारित करे"।

मुझे डर है कि उच्चतम न्यायालय के निर्णय में इन लाभकारी निर्देशों का हमेशा पालन नहीं किया जाता है और कानूनी सहायता एक समस्या बनी हुई है। अनुच्छेद 21 वह अटूट

भंडार प्रतीत होता है जिससे अन्य मौलिक अधिकार निकाले जाते हैं।

अमेरिकी उच्चतम न्यायालय के अलावा, आयरलैंड गणराज्य के न्यायालयों ने माना है कि "संविधान विभिन्न अन्य अधिकारों की प्रत्याभूति देता है जिन्हें स्पष्ट रूप से संदर्भित नहीं किया गया है लेकिन वे स्पष्ट रूप से संदर्भित अधिकारों का हिस्सा हैं"। इन अतिरिक्त अधिकारों को अनिर्दिष्ट या अघोषित अधिकार कहा गया है। कनाडा के उच्चतम न्यायालय ने भी नए मौलिक अधिकारों का निष्कर्ष निकाला है, जिनका मानवाधिकार चार्टर में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है। उपर्युक्त न्यायिक तकनीक विवादास्पद है और इसने अमेरिकी न्यायाधीश रॉबर्ट एच. बोर्क, संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्व सॉलिसिटर जनरल और उच्चतम न्यायालय के लिए राष्ट्रपति रीगन के विफल नामांकित व्यक्ति, की एक तीखी टिप्पणी को आमंत्रित किया। बोर्क ने गजरते हुए कहा:

"चार्टर को अपनाने ने, हालांकि, न्यायाधीशों को प्रोत्साहित किया और न्यायिक सक्रियता के युग की शुरुआत की। पहली बार, न्यायपालिका ने उन कानूनों को रद्द करने के लिए अपने अधिकार का जोरदार उपयोग किया जो उन अधिकारों का उल्लंघन करते थे जिन्हें न्यायाधीश स्वयं मौलिक अधिकार मानते थे जिनका चार्टर में उल्लेख नहीं था..."

बोर्क जिस बात की अनदेखी करते हैं वह यह है कि न्यायाधीशों द्वारा संविधान की भाषा को रचनात्मक रूप से अनुकूलित करने में कुछ भी नया नहीं है ताकि इसके मूल्यों को नई स्थितियों में लागू किया जा सके। अमेरिकी उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश चार्ल्स इवांस ह्यूजेस ने उचित रूप से कहा है कि:

"यदि इस कथन द्वारा कि संविधान का जो अर्थ इसे अपनाने के समय था वही आज भी है, यह कहना अभीष्ट है कि संविधान की महान धाराओं को उसी निर्वचन तक सीमित रखा जाना चाहिए जो निर्माताओं ने अपने समय की स्थिति और दृष्टिकोण के साथ उन पर लागू किया होता, तो यह कथन अपना स्वयं का खंडन करता है"।

मेरी राय में इस न्यायिक तकनीक को संविधान में संशोधन करने के समान बताना एक भ्रांति है। वास्तव में यह हमारे संविधान के भाग III में अधिकारों के विधेयक या मौलिक अधिकारों का एक रचनात्मक निर्वचन है। यह याद रखा जाना चाहिए कि अधिकारों का विधेयक संविधान की अंतरात्मा है। एक स्वतंत्र न्यायपालिका इसकी अंतरात्मा की रक्षक है। न तो संविधान और न ही अधिकारों का विधेयक स्वयं-निष्पादित उपकरण है। यह वह है जो न्यायाधीश कहते हैं कि यह है। और क्या न्यायपालिका संविधान के तहत हमारे अधिकारों की सुरक्षात्मक प्रहरी है, यह संविधान के और विशेष रूप से अधिकारों के विधेयक के उसके निर्वचन पर निर्भर करेगा। अधिकारों के एक अत्यंत उदार विधेयक को संकीर्ण और असंवेदनशील न्यायिक निर्वचन द्वारा शुष्क चर्मपत्र वादों में बदला जा सकता है।

हमारे उच्चतम न्यायालय के इस कथन को याद रखना उचित है कि "एक संविधान कोई अल्पकालिक कानूनी दस्तावेज़ नहीं है जो गुजरते हुए समय के लिए कानूनी नियमों के एक समूह को समाहित करता है। यह एक विस्तारित भविष्य के लिए सिद्धांत निर्धारित करता है और आने वाले युगों तक बने रहने के लिए अभिप्रेत है और फलस्वरूप इसे मानवीय मामलों के विभिन्न संकटों के अनुकूल बनाना पड़ता है"।

इसलिए, हमारे उच्चतम न्यायालय के अनुसार:

"एक संवैधानिक प्रावधान का निर्वचन संकीर्ण और संकुचित अर्थ में नहीं, बल्कि व्यापक और उदार तरीके से किया जाना चाहिए ताकि बदलती परिस्थितियों और उद्देश्यों का पूर्वानुमान लगाया जा सके और उन्हें ध्यान में रखा जा सके ताकि संवैधानिक प्रावधान क्षीण या जड़ न हो जाए बल्कि नई उभरती समस्याओं और चुनौतियों का सामना करने के लिए पर्याप्त लचीला बना रहे"।

न्यायालयों को "सूचीबद्ध कानूनीवाद की कठोरता से बचते हुए एक उदार निर्वचन" करना चाहिए, यह याद रखते हुए कि शब्द मारता है, लेकिन भावना जीवन देती है। भारत के संविधान का भाग IV राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को निर्धारित करता है। वास्तव में वे सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की प्रकृति के हैं। यद्यपि निर्देशक तत्व संविधान के पाठ पर किसी भी

न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं, वे "फिर भी देश के शासन में मौलिक हैं और कानून बनाने में इन सिद्धांतों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा"।

उच्चतम न्यायालय ने, उल्लेखनीय शिल्प कौशल द्वारा, मौलिक अधिकारों में कुछ नीति निदेशक तत्वों को शामिल किया है, जैसे कि राज्य पर एक सम्मानजनक जीवन स्तर, न्यूनतम मजदूरी, कार्य की न्यायसंगत और मानवीय परिस्थितियाँ प्रदान करने और पोषण और सार्वजनिक स्वास्थ्य के स्तर को बढ़ाने का दायित्व डालने वाले तत्व। यह इसी न्यायिक तकनीक के कारण है कि कुछ सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को भारतीय मानवता के निर्धन और दलित वर्गों के लिए जीवित वास्तविकता बना दिया गया है। संविधान के अनुच्छेद 21 में "प्राण" शब्द को व्यापक निर्वचन प्राप्त हुआ है। न्यायालय ने व्यवस्था दी है कि "प्राण" का अर्थ केवल भौतिक अस्तित्व नहीं है, बल्कि इसमें कुछ और भी शामिल है, अर्थात् "मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार और वह सब जो इसके साथ चलता है, अर्थात् जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं जैसे पर्याप्त पोषण, वस्त्र और आश्रय"। इस निर्वचन के आधार पर, उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी है कि मानवीय गरिमा के साथ जीने के अधिकार के दायरे में वायु और जल के प्रदूषण से मुक्त वातावरण का संरक्षण और परिरक्षण शामिल है। न्यायालय ने प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों, वाहनों के यातायात और संबंधित मामलों के संबंध में कई निर्देश जारी किए हैं। स्वास्थ्य और स्वच्छता को जीवन के अधिकार का एक अनिवार्य पहलू माना गया है। फलस्वरूप, न्यायालय ने हस्तक्षेप किया है और पागलखानों और तथाकथित 'केयर होम' के उन निवासियों को राहत प्रदान की है जो अमानवीय परिस्थितियों में रह रहे थे। संविधान का अनुच्छेद 21 प्रावधान करता है कि "किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा वंचित नहीं किया जाएगा"। इस अधिकार की विषय-वस्तु और प्रभावी प्रवर्तन के बारे में वास्तविकता क्या है?

ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य ('गोपालन') के ऐतिहासिक रूप से कुख्यात निर्णय में, उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 पर अनुचित रूप से संकीर्ण और प्रतिबंधात्मक निर्वचन किया। बहुमत ने माना कि "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" का अर्थ संघ संसद या राज्यों की विधायिकाओं द्वारा बनाई गई किसी भी विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया है। इसने प्रक्रिया को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से ओत-प्रोत करने से इनकार कर दिया और पूरी तरह से अधिनियमित कानून के अस्तित्व पर ध्यान केंद्रित किया। तीन दशकों के बाद उच्चतम न्यायालय ने गोपालन में अपने पिछले निर्णय को उलट दिया और मेनका गांधी बनाम भारत संघ में माना कि "अनुच्छेद 21 द्वारा परिकल्पित प्रक्रिया को तर्कसंगतता की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए। इसे 'सही न्यायपूर्ण और निष्पक्ष' होना चाहिए, न कि मनमाना, काल्पनिक या दमनकारी; अन्यथा, यह कोई प्रक्रिया नहीं होगी और अनुच्छेद 21 की आवश्यकताएं पूरी नहीं होंगी"। भारत में, कोई भी व्यक्ति कई विचाराधीन कैदियों को उन जेलों में सड़ते हुए देखने का भयानक दृश्य देखता है जो दोषी पाए जाने पर उन्हें दी जा सकने वाली अधिकतम अवधि से अधिक समय से जेल में हैं।

यह आपराधिक मुकदमों में अत्यधिक देरी के कारण है। इस स्थिति का सामना करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि त्वरित विचारण प्राण और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का एक अभिन्न और अनिवार्य हिस्सा है। एक प्रक्रिया जिसके तहत विचाराधीन कैदी इतनी लंबी अवधि तक जेल में रहे, वह निष्पक्ष, न्यायपूर्ण और उचित प्रक्रिया नहीं थी और इसलिए अनुच्छेद 21 का उल्लंघन हुआ था। परिणामस्वरूप, कई विचाराधीन कैदियों को रिहा कर दिया गया है। इसने विचाराधीन कैदियों को बहुत आवश्यक राहत प्रदान की है। उपचार के बिना अधिकार बेकार हैं। नजरबंदी के आदेश की अवैधता या प्रेस की जब्ती या व्यवसाय करने के लाइसेंस को रद्द करने की मात्र घोषणा उस व्यक्ति को सार्थक उपचार प्रदान नहीं करेगी जिसके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया गया है। ऐसे व्यक्ति को अपकृत्य में हजाने की वसूली के लिए अलग कार्यवाही करने के लिए मजबूर करना कठिन होगा। जिस न्यायालय ने मौलिक अधिकार का उल्लंघन पाया है, वह प्रतिपूरक राहत देने के लिए सबसे उपयुक्त मंच होगा।

नीलाबाती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य के अपने ऐतिहासिक निर्णय में, न्यायालय ने माना कि उसके द्वारा दिया गया मुआवजा अपकृत्य के लिए एक दीवानी कार्यवाही में हजाने के बराबर नहीं था, बल्कि "नागरिक के मौलिक अधिकारों की रक्षा न करने के सार्वजनिक कर्तव्य के उल्लंघन के कारण किए गए गलत कार्य के लिए" सार्वजनिक कानून के तहत राहत का अनुदान था। यह स्पष्ट किया गया था कि यदि उसी आधार पर मुआवजे की वसूली के लिए अन्य कार्यवाही की जाती है तो

प्रदान की गई राशि को समायोजित किया जाएगा ताकि दो बार भुगतान को रोका जा सके। 1997 में विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (विशाखा) के मामले में दिए गए उच्चतम न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया जाना चाहिए। न्यायालय ने माना कि कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन करता है। इसके बाद इसने कई निर्देश जारी किए जिसमें परिभाषित किया गया कि यौन उत्पीड़न क्या होगा, उसे निवारण करने के साधन और यौन उत्पीड़न के लिए लगाए जा सकने वाले दण्ड। न्यायालय के निर्देश संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत बाध्यकारी होंगे।

मेरी राय में, यह तदर्थ न्यायिक विधान का एक स्पष्ट उदाहरण था। हालांकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसके निर्देश तब तक प्रभावी रहेंगे जब तक संसद ने आवश्यक कानून नहीं बना दिया। विशाखा में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के 13 साल बाद कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न विधेयक पेश किया गया था। विशाखा में उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने कार्यस्थलों पर महिलाओं को राहत प्राप्त करने में सक्षम बनाया है और यौन उत्पीड़न की बुराई, हालांकि समाप्त नहीं हुई है, कम हुई है।

मौलिक अधिकारों के संरक्षण और संवर्धन में सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि भारत में लोकहित वाद ('PIL') का विकास रहा है। लोकहित वाद कानूनी कार्यवाही का एक रूप है जिसमें सामान्य रूप से जनता को होने वाली क्षति के संबंध में और उन लोगों के अधिकारों के प्रवर्तन के लिए निवारण मांगा जाता है जो शिकायत की गई कार्यवाही या चूक से प्रभावित हुए हैं लेकिन जो निर्धनता, निरक्षरता या सामाजिक या आर्थिक अक्षमताओं के कारण न्यायालय तक पहुंचने में असमर्थ हैं। उदाहरण के लिए, ये व्यक्ति कैदी, भूमिहीन मजदूर या केयर सेंटर या मानसिक अस्पतालों के निवासी हो सकते हैं।

इन कठोर वास्तविकताओं को देखते हुए, उच्चतम न्यायालय ने वाद लाने के अधिकार (लोकस स्टैंडाई) की पारंपरिक आवश्यकता से हटकर, एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ के अपने ऐतिहासिक निर्णय में घोषणा की कि जहाँ वंचित व्यक्तियों को कानूनी क्षति के लिए न्यायिक निवारण मांगा जाता है, वहाँ जनता का कोई भी सदस्य जो सद्भावनापूर्वक कार्य कर रहा है और जिसका कोई परोक्ष उद्देश्य नहीं है, उनकी ओर से कार्यवाही कर सकता है। न्यायालय ने नए उपकरण गढ़े हैं, नए तरीके विकसित किए हैं और नई रणनीतियाँ अपनाई हैं। उदाहरण के लिए, बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ के मामले में, उसने तथ्यों और डेटा को इकट्ठा करने के उद्देश्य से आयोग नियुक्त किए हैं। उसने कभी जिला मजिस्ट्रेट, या जिला न्यायाधीश, कभी कानून के प्रोफेसर और कभी-कभी एक वकालत करने वाले अधिवक्ता को जांच करने और न्यायालय को रिपोर्ट देने के उद्देश्य से नियुक्त किया है।

निस्संदेह, लोकहित वाद के साथ समस्याएँ हो सकती हैं और हुई भी हैं। लोकहित वाद के तीन गड्डे या खतरे यह हैं कि यह निजी हित वाद; राजनीतिक हित वाद; और प्रचार हित वाद में बदल सकता है। वादी, वकील और यहाँ तक कि न्यायाधीश भी इन खतरों से अछूते नहीं हैं। कभी-कभी यह भुला दिया जाता है कि लोकहित वाद हर बीमारी की दवा नहीं है, जैसे कि ड्राम समय पर नहीं चलना या प्याज की कीमत में वृद्धि। इसके अलावा, लोकहित वाद का दुरुपयोग किया जा सकता है, यह बकाया मामलों के बोझ को बढ़ा सकता है और कुछ मामलों में कार्यपालिका के साथ टकराव पैदा कर सकता है। फिर भी, यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि यह लोकहित वाद के कारण ही है कि मौलिक अधिकारों का आनंद कम से कम कुछ निरक्षर, निर्धन और शोषित व्यक्तियों के लिए कुछ हद तक एक जीवित वास्तविकता बन गया है। जेलों में विचारण की प्रतीक्षा कर रहे कई कैदियों को रिहा किया गया है; दासों की तरह व्यवहार किए जाने वाले और बंधक बनाए गए व्यक्तियों ने स्वतंत्रता प्राप्त की है और उन्हें पुनर्वासित किया गया है; केयर होम और पागलों के लिए शरणस्थलों में रहने वालों की स्थिति और पत्थर की खदानों और ईंट के भट्टों में श्रमिकों की स्थिति में सुधार हुआ है। पर्यावरण और पारिस्थितिकी के मुद्दों के क्षेत्र में कानूनी सक्रियता और खतरनाक तकनीक के उपयोग में जवाबदेही संभव हुई है और इसके सुखद परिणाम मिले हैं।

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (केशवानंद भारती) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित अनूठे सिद्धांत का उल्लेख किए बिना व्याख्यान को समाप्त करना उचित नहीं होगा। इसने माना कि संविधान के संशोधन की शक्ति, हालांकि अनुच्छेद 368

के संदर्भ में पूर्ण है, लेकिन निरंकुश नहीं है और इसका प्रयोग इसकी आवश्यक विशेषताओं को नष्ट करने और इस प्रकार संविधान की 'आधारभूत संरचना' को क्षति पहुँचाने के लिए नहीं किया जा सकता है। परिणाम यह है कि संसद तब भी सर्वोच्च नहीं है जब वह अपनी संशोधन की घटक शक्ति का प्रयोग करती है और अंतिम शब्द उच्चतम न्यायालय के पास रहता है। इस निर्णय की जब यह दिया गया था तब बहुत आलोचना हुई थी। आलोचकों ने ज़ोर-शोर से तर्क दिया कि उच्चतम न्यायालय ने इस निर्णय द्वारा संविधान में दी गई संशोधन शक्ति पर प्रभुत्व जमा लिया था और अपनी शक्ति का व्यापक और अनुचित रूप से विस्तार किया था। एक अन्य आलोचना न्यायाधीशों के बीच इस बारे में आम सहमति की कमी के बारे में थी कि संविधान की 'आवश्यक या आधारभूत विशेषताएं' क्या हैं।

ऐतिहासिक तथ्यों और पृष्ठभूमि को ध्यान में रखा जाना चाहिए। केशवानंद भारती के निर्णय से पहले, कांग्रेस पार्टी को संसद में प्राप्त प्रचंड बहुमत ने संवैधानिक संशोधनों को सुगम बना दिया था जो मौलिक अधिकारों का गंभीर उल्लंघन करते थे। ये संशोधन दोनों सदनों में बिना किसी गंभीर बहस या चर्चा के पारित कर दिए गए और उसके बाद उन्हें संविधान की 9वीं अनुसूची में रख दिया गया, जिससे उन्हें मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती देने से सुरक्षित बना दिया गया। श्रीमती इंदिरा गांधी के चुनाव को वैध बनाने के लिए किए जाने वाले संवैधानिक संशोधन की विशालता, जिसे इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अमान्य घोषित कर दिया गया था, ने आधारभूत संरचना के सिद्धांत की बुद्धिमत्ता और प्रभावकारिता के बारे में शुरुआती संदेहों को कुछ हद तक दूर कर दिया।

उच्चतम न्यायालय की नौ न्यायाधीशों की पीठ ने आई.आर. कोएलो बनाम तमिलनाडु राज्य के मामले में हाल ही में आधारभूत संरचना के सिद्धांत पर विस्तार से विचार किया। न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह माना कि किसी दिए गए मामले में मौलिक अधिकार की प्रकृति और उसके उल्लंघन की सीमा के आधार पर, यह कहा जा सकता है कि संविधान की आधारभूत संरचना को क्षति पहुँचाई गई थी। जिन मौलिक अधिकारों को न्यायालय ने संविधान के मूल मूल्यों का मूर्त रूप माना, वे अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 15, अनुच्छेद 19 और अनुच्छेद 21 हैं। इस प्रकार, इन मौलिक अधिकारों को सर्वोच्चता प्रदान की गई है और आधारभूत संरचना के सिद्धांत का विस्तार किया गया है। आधारभूत संरचना का सिद्धांत कुछ समस्याएँ प्रस्तुत करता है, विशेष रूप से संविधान की आवश्यक या आधारभूत विशेषताओं की पहचान करने में। वर्तमान में, न्यायिक सहमति यह प्रतीत होती है कि लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, संघवाद, विधि का शासन और न्यायिक समीक्षा की शक्ति के साथ एक स्वतंत्र न्यायपालिका को आधारभूत विशेषताओं के रूप में माना जा सकता है।

इस तर्क में कुछ दम है कि उच्चतम न्यायालय ने इस आधारभूत संरचना सिद्धांत को विकसित करने में अधो-विधायी कार्यों का प्रयोग किया है और प्रभावी रूप से अनुच्छेद 368 में संशोधन किया है, जो संविधान के संशोधन की शक्ति से संबंधित है। दूसरी ओर, इस सिद्धांत ने यह सुनिश्चित किया है कि किसी भी सदन में पूर्ण बहुमत का आनंद लेने वाला कोई भी दल ऐसा संवैधानिक संशोधन नहीं कर सकता जो भारत को एक धर्मतंत्रवादी राज्य बना दे, यह प्रावधान करके कि केवल कुछ समुदायों के सदस्य ही राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और भारत के मुख्य न्यायाधीश का पद धारण कर सकते हैं। आधारभूत संरचना के सिद्धांत के कारण ही समय-समय पर स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के प्रावधानों को संविधान से निरस्त नहीं किया जा सकता है, और न ही यह प्रावधान किया जा सकता है कि चुनाव हर पांच साल के बजाय संसद द्वारा निर्धारित किए जाने पर होंगे, क्योंकि पूर्ववर्ती लोकतंत्र का मजाक बना देगा। आधारभूत संरचना के सिद्धांत ने यह सुनिश्चित किया है कि न्यायपालिका को न्यायिक समीक्षा की शक्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है और न ही विधि के शासन को निरस्त किया जा सकता है। पुनः, इसी सिद्धांत के कारण संघवाद को समाप्त नहीं किया जा सकता है और राज्यों को केंद्र का जागीरदार नहीं बनाया जा सकता है। ये, मेरे विचार में, आधारभूत संरचना के सिद्धांत से बहने वाले मूर्त और ठोस लाभ हैं, जिसने सबसे बढ़कर, हमारे संविधान की अखंडता को संरक्षित किया है। यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं है, जिसके लिए हम अपने उच्चतम न्यायालय के आभारी हैं।

अब मैं अपने समापन विचारों के साथ व्याख्यान समाप्त कर सकता हूँ: भारत जैसे देशों में जहाँ श्रम कानूनों की अवहेलना, अवैध हिरासत, भेदभावपूर्ण कार्य और अन्य उल्लंघनों में हर दिन मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, कोई सोच सकता है कि मौलिक अधिकारों की निरर्थकता के बारे में किसी सनकी व्यक्ति के ताने का क्या जवाब दिया जा सकता है। उत्तर यह है

कि प्रत्याभूत मौलिक अधिकार नागरिकों और न्याय के लिए लड़ने वाले समूहों को न्यायालय जाने के लिए सशक्त बनाते हैं। यह विधि के शासन की पुष्टि के अवसर भी प्रदान करता है। यह ऐसे मानदंड और मानक भी स्थापित करता है जिनका उपयोग लोगों को उनके बुनियादी अधिकारों को जानने, माँगने और लागू करने के लिए शिक्षित करने के लिए किया जा सकता है। इसका प्रशासन पर एक सुखद प्रभाव पड़ता है जिसे जागरूक किया जाता है कि उसे मौलिक अधिकारों के अनुशासन के अनुरूप होना चाहिए। सबसे बढ़कर, अधिकारों का विधेयक, मौलिक अधिकारों को सूचीबद्ध करने वाला भाग III, एक निरंतर अनुस्मारक है कि राज्य की शक्तियाँ असीमित नहीं हैं और मानवीय व्यक्तित्व अमूल्य है।



# विधायिका और न्यायपालिका के बीच क्षेत्राधिकार संबंधी संघर्ष

द्वारा डॉ. ए. के. घोषाल, एम.ए., पीएच.डी. (लंदन)  
प्रधानाचार्य, सुरेंद्रनाथ इवनिंग कॉलेज, कलकत्ता

उत्तर प्रदेश विधानसभा और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के बीच विधानमंडल के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के मुद्दे पर हाल ही में हुए विवाद ने एक ऐसी श्रृंखला शुरू कर दी, जिसने राज्य में एक बड़ा संवैधानिक संकट उत्पन्न कर दिया और अंततः इस मामले को संविधान के अनुच्छेद 143 के तहत सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष राष्ट्रपति के संदर्भ में भेजा गया, ताकि संबंधित संविधान के प्रावधानों के निहितार्थों और साथ ही पक्षों के दावों की वैधता या अवैधता पर सर्वोच्च न्यायालय की राय ली जा सके। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर अपनी बात रखने के इच्छुक सभी पक्षों को उचित सुनवाई देने के बाद अपनी स्वतंत्र राय दी है और वाद यहीं समाप्त होता है। यद्यपि इस राय में देश के सर्वोच्च न्यायालय का पूरा महत्व और अधिकार है, फिर भी यह कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं है। अब अगला कदम सरकार को उठाना है कि वह मामले को यहीं छोड़ दे या आवश्यक कानून या संवैधानिक संशोधन द्वारा न्यायालय के बाध्यकारी निर्णय को लागू करे। सरकार ने इस मामले पर विचार करने के लिए समय लिया है, क्योंकि प्रधानमंत्री की राय में कोई भी कार्य जल्दबाजी में नहीं किया जाना चाहिए। मामला अत्यंत संवेदनशील होने के कारण उन्होंने इस पर विचार-विमर्श में अत्यधिक संयम और सावधानी बरतने का आग्रह किया और संसद के अगले सत्र तक इस पर आगे की चर्चा स्थगित कर दी। इस लेख में विवाद के राजनीतिक और संवैधानिक पहलुओं पर चर्चा करने का प्रयास किया गया है और यद्यपि विवाद वास्तव में उत्तर प्रदेश की घटना के संकीर्ण संदर्भ में उत्पन्न हुआ है, फिर भी यहाँ इसे न्यायपालिका और विधायिका के बीच एक व्यापक मुद्दे के परिप्रेक्ष्य में चर्चा किया गया है, क्योंकि इस विशेष मामले में जो भी निर्णय लिया जाएगा, उसका व्यापक प्रभाव होगा।

## उत्तर प्रदेश प्रकरण के तथ्य

अब मामले के तथ्यों पर आते हैं वह यह है कि विवाद की शुरुआत गोरखपुर के समाजवादी कार्यकर्ता केशव सिंह द्वारा विधानसभा अध्यक्ष को लिखे गए एक पत्र से हुई, जिसमें सदन की गरिमा के लिए हानिकारक मानी जाने वाली सामग्री थी और सदन के सदस्य के विशेषाधिकार का उल्लंघन करने का आरोप लगाया गया था। उन्हें चेतावनी देने के लिए सदन के समक्ष पेश होने के लिए बुलाया गया और बाद में उसी दिन, 14 मार्च, 1964 को, अध्यक्ष से फटकार प्राप्त करते समय उनके आचरण द्वारा सदन की अवमानना के लिए उन्हें सात दिनों के साधारण कारावास की सजा सुनाई गई। श्री सिंह के वकील बी. सोलोमन ने उत्तर प्रदेश उच्च न्यायालय की खंडपीठ (लखनऊ) के समक्ष अनुच्छेद 226 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की। न्यायमूर्ति नासिरुल्लाह बेग और जी. डी. सैगल ने याचिका स्वीकार करते हुए 19 मार्च अर्थात् छह दिन के कारावास के पश्चात, सिंह को जमानत पर रिहा करने का आदेश दिया। 21 मार्च को सदन के एक सदस्य द्वारा विशेषाधिकार हनन का प्रस्ताव पेश किया गया। यह तर्क दिया गया कि सिंह और उनके वकील ने न्यायालय में याचिका प्रस्तुत करके और इस प्रकार विशेषाधिकार के मामले में सदन के अधिकार को चुनौती देकर तथा विधानसभा के आदेश के विपरीत दो न्यायाधीशों को जमानत पर रिहा करके विधानसभा की अवमानना की है। सदन ने 21 मार्च को भारी बहुमत (129 के मुकाबले 19) से एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें सिंह को उनकी शेष सजा काटने के लिए पुनः गिरफ्तार करने और सदन की अवमानना के लिए दो न्यायाधीशों और वकील बी. सोलोमन को हिरासत में सदन के समक्ष पेश करने का आदेश दिया गया। इसके बाद, दो न्यायाधीशों द्वारा अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका प्रस्तुत किए जाने पर, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने 21 मार्च के विधानसभा प्रस्ताव के कार्यान्वयन पर रोक लगाने और न्यायाधीशों के खिलाफ वारंट जारी करने पर रोक लगाने का अंतरिम आदेश पारित किया। उसी समय अध्यक्ष ने दोनों न्यायाधीशों के विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट पर हस्ताक्षर किए और मार्शल को उन्हें हिरासत में लेकर सदन के समक्ष प्रस्तुत करने का आदेश दिया। 21 मार्च के विवादास्पद प्रस्ताव में संशोधन करने का सरकार का प्रयास विफल रहा। 25 मार्च को सदन ने अवमानना के दोषी पाए गए और मूल प्रस्ताव में नामित व्यक्तियों को

सदन की अवमानना के लिए दंडित न किए जाने के संबंध में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का अवसर देने का प्रस्ताव पारित किया और इसके बाद उनकी गिरफ्तारी के लिए पहले से जारी वारंट वापस ले लिए गए। संभागीय आयुक्त, जिन्हें अध्यक्ष का आदेश और पूर्ण पीठ द्वारा आदेश के निष्पादन पर रोक लगाने का आदेश प्राप्त हुआ था, असमंजस में थे और उन्होंने अध्यक्ष को सूचित किया कि वे विरोधाभासी आदेशों के मद्देनजर कानूनी सलाह ले रहे हैं। इसके बाद मामला नई दिल्ली स्थानांतरित हो गया। संसद में इस घटनाक्रम पर तीखी बहस हुई। केंद्र सरकार ने अटॉर्नी जनरल से सलाह ली और संभवतः उनकी सलाह पर ही अनुच्छेद 143 के तहत राष्ट्रपति द्वारा सदन के विशेषाधिकारों से संबंधित मामलों में न्यायालयों और राज्य विधानमंडलों के अधिकार क्षेत्र के दायरे पर आधिकारिक राय के लिए सर्वोच्च न्यायालय को संदर्भ भेजा गया। सर्वोच्च न्यायालय ने सभी उच्च न्यायालयों, राज्य विधानमंडलों, अधिवक्ता-जनरल और अटॉर्नी-जनरल आदि को सुनवाई की नोटिस जारी की। राज्य विधानमंडल की ओर से मुख्य मामला महाराष्ट्र के अधिवक्ता-जनरल एच. एम. सीरवाई ने और न्यायाधीशों की ओर से भारत के पूर्व अटॉर्नी-जनरल एम. सी. सिटलवाद ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया। पूरा मुद्दा मुख्य रूप से अनुच्छेद 194 (3) की व्याख्या पर केंद्रित था, जो राज्य विधानमंडलों के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के दायरे और सीमा से संबंधित है, साथ ही अनुच्छेद 211, 212 और 226 भी इसमें शामिल हैं, जो कुछ परिस्थितियों में विधानमंडल और उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार की संबंधित सीमाओं से संबंधित हैं। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सुनवाई के दौरान विवाद के पक्षों द्वारा अलग-अलग व्याख्याएं प्रस्तुत की गईं जिसका प्रारंभ में समीक्षा करना हमारे लिए लाभकारी हो सकता है।

## विवाद की सुनवाई

### विधायिका का वाद

उत्तर प्रदेश विधान सभा की ओर से उपस्थित श्री एच. एम. सीरवाई ने तर्क दिया कि संदर्भ में सार रूप में अनुच्छेद 194 (3) का निर्माण शामिल है, जिसमें कहा गया है कि राज्य विधानमंडल के सदन की शक्तियां, विशेषाधिकार आदि ऐसी थीं, जिन्हें समय-समय पर विधायिका द्वारा कानून द्वारा परिभाषित किया जा सकता था और जब तक इस तरह परिभाषित नहीं किया जाता था, संविधान के प्रारंभ में हाउस ऑफ कॉमन्स के समान थे। चूंकि विधानमंडल ने अब तक कानून द्वारा विशेषाधिकारों को परिभाषित नहीं किया है, इसलिए उन्होंने दावा किया कि राज्य विधानमंडल के विशेषाधिकार सदन ऑफ कॉमन्स के विशेषाधिकारों के बिल्कुल बराबर हैं और अनुच्छेद के प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या करने और स्वयं यह निर्धारित करने का अनन्य अधिकार सदन को प्राप्त है कि उसकी शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां क्या हैं, अवमानना क्या है और अवमानना के लिए पर्याप्त दंड क्या है। अतः यदि इस शक्ति के अनुसरण में सदन किसी व्यक्ति को हिरासत में लेने का वारंट जारी करता है, तो न्यायालयों द्वारा इस पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है और न्यायाधीशों को अवमानना के लिए हिरासत में लिए गए व्यक्ति को हस्तक्षेप करने या जमानत देने का कोई अधिकार नहीं है। सीरवाई ने ऑस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय द्वारा अपने संविधान के अनुच्छेद 194 (3) के समान एक प्रावधान के तहत दिए गए क्वीन बनाम रिचर्ड्स मामले का संदर्भ दिया, जिसमें मुख्य न्यायाधीश ने यह माना था कि हाउस ऑफ कॉमन्स (इंग्लैंड) की सभी शक्तियां ऑस्ट्रेलियाई प्रतिनिधि सभा को हस्तांतरित हो गई हैं और न्यायालयों को सदन द्वारा जारी वारंटों की वैधता की जांच करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। उन्होंने इंग्लैंड के शेरीफ ऑफ मिडलसेक्स मामले का उल्लेख किया, जिसमें यह स्थापित किया गया था कि न्यायालय के आदेशों का पालन करने वाले अधिकारियों को कारावास में डालने के लिए संसद के विरुद्ध न्यायालय द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है और संसद की अवमानना के लिए सामान्य वारंट पर न्यायालय के अधिकारियों को हिरासत में लेने की शक्ति को कभी नकारा नहीं गया था। श्री सीरवाई ने तर्क दिया कि अनुच्छेद 194 (3) द्वारा प्रदत्त शक्तियां और विशेषाधिकार अनुच्छेद 19 द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के अधीन नहीं हैं और न ही सदन की शक्तियां किसी न्यायालय की जांच के अधीन हैं। उन्होंने पटना के सर्चलाइट मामले (एम. एस. एम. शर्मा बनाम श्रीकृष्णा सिंह) का संदर्भ दिया, जिसमें समाचार पत्र के संपादक श्री एम. एस. एम. शर्मा को श्रीकृष्णा सिन्हा के विरुद्ध रिट याचिका दी गई थी, जिसमें अनुच्छेद 19 (1) (क) के तहत मौलिक अधिकारों पर सदन के विशेषाधिकारों की प्रधानता को बरकरार रखा गया था। इस मामले में न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 194 (2) के प्रावधानों से संकेत मिलता है कि इसके तहत विधायिका के सदस्यों को दी गई स्वतंत्रता को किसी भी कानून द्वारा किसी भी तरह से कम नहीं किया जा सकता है। संविधान निर्माताओं ने सदन की शक्तियों और विशेषाधिकारों की तर्कसंगतता

से संतुष्ट होकर उन्हें अनुच्छेद 19 (1) द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के अधीन करना उचित नहीं समझा और सदन की तरह ही राज्य विधानमंडल को भी अपने विशेषाधिकारों का निर्धारण स्वयं करना था और वह न्यायालय द्वारा जारी किसी भी निषेधाज्ञा की अवहेलना कर सकता था। वास्तव में, अध्यक्ष की अनुमति के बिना किसी भी बाहरी प्राधिकरण का वारंट सदन में प्रवेश भी नहीं कर सकता था। इसके अलावा, संविधान के किसी अन्य प्रावधान ने विधायिकाओं के विशेषाधिकारों को कम नहीं किया या उन्हें न्यायालयों के अधीन नहीं किया। उनके विचार में, अवमानना कार्यवाही से छूट का मूल कारण सार्वजनिक नीति था। यह अत्यंत महत्वपूर्ण था कि न्यायालयों और विधायिकाओं दोनों को अपनी कार्यवाही व्यवस्थित ढंग से संचालित करने की शक्ति हो और अपने सदस्यों और अधिकारियों को उनके सौंपे गए कार्यों के निर्वहन में अपमान या बाधा से बचाने के लिए। उन्होंने तर्क दिया कि जिस प्रकार उच्च न्यायालयों को अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति द्वारा अपने उच्च कार्यों को बाधा और अपमान से बचाने की शक्ति प्राप्त है, उसी प्रकार संविधान ने भारत के सभी विधानमंडलों को अवमानना के लिए दंडित करने की व्यापक शक्तियाँ प्रदान की हैं और विधानमंडल को किसी न्यायाधीश को भी अवमानना के लिए दंडित करने का अधिकार है। अनुच्छेद 194 के तहत विधानमंडलों को अपनी कार्यवाही निर्धारित करने की शक्ति एक पूर्ण अधिकार है जो न्यायालयों द्वारा समीक्षा के अधीन नहीं है। कई मामलों में जहां संसद द्वारा दावा किए गए अधिकार नागरिकों के अधिकारों के साथ टकराव में आए, वहां न्यायालयों ने हस्तक्षेप नहीं किया। अनुच्छेद 194 (2) ने विधानमंडल में सदस्यों द्वारा कही गई किसी भी बात या दिए गए किसी भी मत के संबंध में किसी भी न्यायालय में कार्यवाही को प्रतिबंधित करके इस बात पर स्पष्ट रूप से जोर दिया है। के. सिंह द्वारा उच्च न्यायालय में दायर याचिका, जिसमें सदन की कार्यवाही को अवैध बताते हुए उस पर सवाल उठाया गया था और सदन के कई सदस्यों पर दुर्भावना का आरोप लगाया गया था, उनके विचार में अनुच्छेद 194 और इंग्लैंड में ऐसे मामलों में लागू कानून के तहत वर्जित थी। अनुच्छेद 211 के संदर्भ में, जो उच्च न्यायालयों के किसी भी न्यायाधीश के आचरण पर विधायिका में चर्चा पर प्रतिबंध लगाता है और जिस पर न्यायाधीशों ने न्यायाधीशों के विरुद्ध अवमानना कार्यवाही या उनकी आलोचना को रोकने के लिए भरोसा किया है, वकील ने तर्क दिया कि इसमें न्यायालयों द्वारा इसके प्रवर्तन का कोई साधन नहीं दिया गया है। अनुच्छेद 211 न्यायाधीशों को कोई अधिकार प्रदान नहीं करता है, इसलिए अनुच्छेद 226 के तहत इसके प्रवर्तन का प्रश्न ही नहीं उठता। यह केवल विधायिका पर स्वैच्छिक और स्वतः लागू संयम प्रदान करता है। वकील ने विधायिका को ऐसी शक्ति प्रदान करने की आलोचना की आशंका जताई, क्योंकि इसका दुरुपयोग हो सकता था। उनका उत्तर था कि यह आपत्ति अवमानना आदि के लिए न्यायालयों को दी गई कारावास की शक्ति पर भी समान रूप से लागू हो सकती है और दुरुपयोग की संभावना किसी शक्ति को छीनने का औचित्य नहीं है। श्री सिंह के अधिवक्ता श्री बी. सोलोमन के संबंध में, समिति ने यह तर्क दिया कि बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर करने के साथ-साथ अवमानना के लिए विधायिका की शक्ति को चुनौती देकर उन्होंने स्वयं को सदन की अवमानना के लिए उत्तरदायी बना लिया है।

### न्यायपालिका का वाद

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की ओर से यह मामला सर्वोच्च न्यायालय की विशेष पीठ के समक्ष पूर्व अटॉर्नी-जनरल श्री एम. सी. सेतलवाड द्वारा प्रस्तुत किया गया। प्रारंभ में ही उन्होंने विपक्षी, न्यायपालिका के इस तर्क का खंडन किया कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायालयों को दी गई व्यापक शक्तियों को अनुच्छेद 194 के अंतर्गत प्रतिबंधित किया गया है। उन्होंने तर्क दिया कि यह अकल्पनीय है कि भारतीय संविधान, जिसने न्यायपालिका के अधिकारों का सृजन किया है, यह कल्पना कर सकता है कि अनुच्छेद 194 के उत्तरार्ध में निहित शक्तियाँ, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ मौलिक अधिकारों से ऊपर हों। उन्होंने कहा कि भारत का संघीय संविधान है जिसमें सरकार के तीन अंगों - कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका - के बीच शक्तियों का विभाजन है। इसलिए न्यायिक समीक्षा का प्रावधान संविधान में निहित है। यहां तक कि न्यायपालिका की शक्तियाँ भी स्पष्ट रूप से सीमित हैं। संविधान में विधायिका की शक्तियों को सीमित करने वाले प्रावधान भी हैं। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 211 किसी न्यायाधीश के कर्तव्य निर्वहन में उसके आचरण पर विधायिका में चर्चा को प्रतिबंधित करता है। अनुच्छेद 212 (2) में यह प्रावधान है कि न्यायालय विधायिका की कार्यवाही की जांच नहीं कर सकते, यह प्रावधान केवल विधानमंडल द्वारा पारित किसी भी कानून और सदन की कार्यवाही की "अनियमितता" के संबंध में ही न्यायिक प्रतिरक्षा के अधिकार में ही विधायिका को प्रतिरक्षा प्रदान करता है, इससे अधिक कुछ नहीं। अनुच्छेद 212 (2) के अंतर्गत केवल सीमित प्रतिरक्षा प्रदान की गई थी। इसका तात्पर्य यह था कि विधानमंडल संविधान के अंतर्गत प्रदत्त अपनी किसी भी शक्ति या विशेषाधिकार की न्यायिक समीक्षा

से प्रतिरक्षा का दावा नहीं कर सकता था।

उन्होंने तर्क दिया कि अनुच्छेद 194 (3) के प्रावधानों से स्पष्ट है कि अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायालयों का क्षेत्राधिकार वर्जित नहीं है, विधायिका के विशेषाधिकार मौलिक अधिकारों के अधीन हैं और अवमानना के मामलों में न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को वर्जित करने का दावा सदन के विशेषाधिकारों का हिस्सा नहीं है। उन्होंने कहा कि संविधान की व्याख्या का सही नियम "सामंजसपूर्ण व्याख्या" है, अर्थात् संविधान के प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि उनके बीच मौजूद किसी भी स्पष्ट विरोधाभास को दूर किया जा सके। संविधान की संरचना को ध्यान में रखते हुए, अनुच्छेद 194 (3) में न्यायालय के क्षेत्राधिकार का निहित अपवर्जन नहीं किया जा सकता। उन्होंने विपक्षी दल के इस सुझाव का खंडन किया कि अनुच्छेद 194 (3) राज्य विधानमंडलों को सदन के सभी विशेषाधिकार प्रदान करता है, क्योंकि यह हास्यास्पद होगा, क्योंकि सदन के क्राउन के साथ संबंधों से जुड़े कुछ विशेषाधिकार हैं, जो स्पष्ट रूप से भारत पर लागू नहीं होते। राज्य विधानमंडलों को केवल सदन के वे विशेषाधिकार प्राप्त थे जो लागू थे और संविधान के अन्य प्रावधानों से विरोधाभास नहीं रखते थे। यह सुझाव कि अनुच्छेद 194 (3) द्वारा चार सौ वर्षों के ब्रिटिश इतिहास को संविधान में समाहित किया गया था, सही नहीं था। इसके अलावा, इस संदर्भ में केवल भारतीय संविधान के प्रारंभ के समय विद्यमान विशेषाधिकार ही प्रासंगिक थे। श्री सीतलवाद ने तर्क दिया कि न्यायालयों को विधानमंडल के वारंट द्वारा अवमानना के लिए दोषी ठहराए गए किसी भी नागरिक की याचिका पर विचार करने और उससे निपटने का अधिकार है, चाहे वह सामान्य वारंट हो या विशिष्ट वारंट। यदि वारंट सामान्य रूप में था, तो यह माना जा सकता है कि विधानमंडल ने अपने विशेषाधिकारों की सीमा के भीतर कार्य किया था। न्यायालय विधानमंडल के विशेषाधिकारों के "अस्तित्व और विस्तार" का भी निर्णायक था। निस्संदेह "मान्यता प्राप्त और निर्विवाद" विशेषाधिकार हैं, लेकिन यह विशेषाधिकार (इस प्रश्न पर न्यायिक समीक्षा से छूट का दावा करने वाला सदन का विशेषाधिकार) उनमें से एक नहीं है। न्यायालय निश्चित रूप से वारंट की जांच उसी प्रकार कर सकते हैं जैसे किसी उच्च न्यायालय द्वारा जारी वारंट की। न्यायालय आमतौर पर सामान्य वारंट पर विचार नहीं करते थे, इसलिए नहीं कि यह सदन का विशेषाधिकार था जैसा कि विपक्षी दल ने तर्क दिया था, बल्कि इसलिए कि यह माना जाता था कि विधायिका अपने विशेषाधिकारों की सीमा के भीतर है। उन्होंने 21 मार्च के उत्तर प्रदेश विधान सभा के उस प्रस्ताव को सुनाया, जिसमें दो न्यायाधीशों को "अवैध" घोषित किया गया था, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 211 में निहित निषेध का उल्लंघन करता था, जिसके अनुसार राज्य विधानमंडल में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के अपने कर्तव्यों के निर्वहन से संबंधित किसी भी प्रकार की चर्चा नहीं की जा सकती।

### सर्वोच्च न्यायालय का निष्कर्ष

सर्वोच्च न्यायालय ने छह-एक के बहुमत से निर्णय सुनाया, जिसमें न्यायमूर्ति सरकार ने इस बात से असहमति व्यक्त की कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले की खंडपीठ (लखनऊ), के. सिंह की याचिका पर विचार करने और उन्हें अंतरिम जमानत देने के लिए सक्षम थी और ऐसा करने में दोनों न्यायाधीश विधान सभा की अवमानना के दोषी नहीं थे और हिरासत में बाद के समक्ष पेश किए जाने या कोई स्पष्टीकरण देने के लिए उत्तरदायी नहीं थे और उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ अध्यक्ष के वारंट पर रोक लगाने के लिए सक्षम थी।

असहमति व्यक्त करते हुए न्यायमूर्ति सरकार ने अपने निर्णय में कहा कि संविधान के अनुच्छेद 194 (3) के तहत उत्तर प्रदेश विधानसभा को सामान्य वारंट द्वारा अवमानना का दंड देने का अधिकार है, जिसके परिणामस्वरूप न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को समाप्त किया जा सकता है, और विधायिका के विशेषाधिकार मौलिक अधिकारों के अधीन नहीं हैं। उन्होंने यह भी कहा कि विधान सभा को न्यायाधीश से स्पष्टीकरण मांगने का अधिकार है। अधिकांश न्यायाधीशों ने राष्ट्रपति के संदर्भ में उठाए गए पांच प्रश्नों पर निम्नलिखित राय व्यक्त की:

(1) इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ के लिए यह उचित था कि वह सदन की अवमानना और विशेषाधिकारों के उल्लंघन के लिए विधान सभा द्वारा श्री सिंह की कारावास की वैधता को चुनौती देने वाली याचिका पर विचार करे और उससे निपटे तथा याचिका के निपटारे तक उनकी जमानत पर रिहाई के आदेश पारित करे।

(2) श्री सिंह द्वारा अपनी ओर से उच्च न्यायालय में याचिका प्रस्तुत करवाने और उनके अधिवक्ता श्री बी. सोलोमन द्वारा याचिका प्रस्तुत करने तथा दोनों न्यायाधीशों द्वारा याचिका पर विचार करने और उस पर कार्रवाई करने तथा श्री सिंह को जमानत पर रिहा करने का आदेश देने के द्वारा अवमानना नहीं की गई।

(3) उत्तर प्रदेश विधानसभा दो न्यायाधीशों और श्री सोलोमन को हिरासत में लेकर अपने समक्ष पेश करने का निर्देश देने या सदन की अवमानना के लिए उनसे स्पष्टीकरण मांगने के लिए सक्षम नहीं थी।

(4) इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ दो न्यायाधीशों और अधिवक्ता श्री सोलोमन की याचिका पर सुनवाई और उससे निपटने तथा उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष और अन्य प्रतिवादियों को विधानसभा के निर्देश को लागू करने से रोकने के लिए अंतरिम आदेश पारित करने के लिए सक्षम थी।

(5) उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश जो विधानमंडल के किसी आदेश या निर्णय को चुनौती देने वाली याचिका पर सुनवाई करता है या उससे निपटता है, जिसमें याचिकाकर्ता पर कोई दंड लगाया गया हो, बशर्ते कि वह सदन का सदस्य न हो, और सदन के बाहर कथित अवमानना करता हो या याचिकाकर्ता के विरुद्ध अवमानना या उसके विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के उल्लंघन के लिए कोई प्रक्रिया जारी करता हो या ऐसी याचिका पर कोई आदेश पारित करता हो, तो वह उक्त विधानमंडल की अवमानना नहीं करता है और विधानमंडल अपनी शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों को लागू करने के लिए ऐसे न्यायाधीश के विरुद्ध कार्यवाही करने में सक्षम नहीं है। न्यायालय ने कहा कि पक्षों के बीच विवाद को निम्नलिखित प्रश्नों के रूप में व्यक्त किया जा सकता है-

(क) क्या सदन इस मुद्दे का एकमात्र और अनन्य निर्णायक था कि क्या उसकी अवमानना की गई थी?

(ख) क्या सदन ही उस दंड का एकमात्र और अनन्य निर्णायक था जो सदन की अवमानना के दोषी पाए गए पक्ष पर लगाया जाना चाहिए?

(ग) क्या उच्च न्यायालय सदन द्वारा जारी सामान्य वारंट के तहत हिरासत में लिए गए व्यक्ति के विरुद्ध बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर विचार करने और निर्णय लेने का हकदार था?

न्यायालय ने स्पष्ट किया कि इन प्रश्नों का उत्तर अनुच्छेद 194 (3) के प्रावधानों के निहितार्थ पर निर्भर करता है और यह माना कि प्रावधान की व्याख्या अंततः केवल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में है, जिन्हें इसका दायरा और सीमा निर्धारित करनी है। अनुच्छेद की व्याख्या करते समय न्यायालयों को संविधान के अन्य प्रावधानों पर भी विचार करना होगा जो इसी विषय से संबंधित हैं। यह सुझाव दिया गया कि इंग्लैंड में विशेषाधिकारों से संबंधित कुछ मामलों में न्यायालयों और सदन की शक्तियों में द्वैतवाद है। लेकिन अनुच्छेद 226 और 32 के प्रावधानों को देखते हुए भारत में ऐसा तर्क नहीं दिया जा सकता। अनुच्छेद 212 (1) के प्रावधानों से इस दृष्टिकोण को बल मिला, जो किसी नागरिक को विधायिका की किसी भी कार्यवाही को अवैधता के आधार पर चुनौती देने का अधिकार देता प्रतीत होता है। फिर न्यायालय की राय में अनुच्छेद 211 का सही अर्थ यह है कि किसी न्यायाधीश के अपने कर्तव्यों के निर्वहन से संबंधित आचरण पर सदन के भीतर वैध रूप से चर्चा नहीं की जा सकती, भले ही न्यायालय में कोई उपाय उपलब्ध न हो। लेकिन ऐसे आचरण को सदन द्वारा अनुच्छेद 194 (3) के तहत अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करते हुए किसी भी कार्यवाही का विषय नहीं बनाया जा सकता था। अनुच्छेद ने सदन को किसी न्यायाधीश के अवमानना के लिए उसके विरुद्ध कार्रवाई करने का अधिकार नहीं दिया था।

न्यायालय की राय में, राज्य विधानमंडलों द्वारा किसी व्यक्ति को सामान्य वारंट द्वारा हिरासत में लेने और इस प्रकार न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को समाप्त करने का दावा संविधान के मूल प्रावधानों के अनुरूप नहीं था। अनुच्छेद 32 और संभवतः अनुच्छेद 226 भी मौलिक अधिकार के उल्लंघन के विरुद्ध राहत प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार प्रदान करते हैं और संविधान द्वारा विधानमंडलों को प्रदत्त किसी भी शक्ति या विशेषाधिकार के संबंध में कोई अपवाद नहीं बनाया गया है। श्री

सोलोमन द्वारा कथित अवमानना के संबंध में न्यायालय ने कहा कि अधिवक्ता अधिनियम अधिवक्ताओं को सभी न्यायालयों में वकालत करने का अधिकार प्रदान करता है और एक नागरिक अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालयों में जाने हेतु कानूनी पेशे की सहायता प्राप्त करने का हकदार है। इस प्रक्रिया में सहायता करने के अधिवक्ता के अधिकार अनुच्छेद 194 (3) द्वारा अप्रतिबंधित रहने चाहिए।

न्यायालय ने कहा कि वह इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकता कि बंदी प्रत्यक्षीकरण के मामलों में या उन मामलों में जहां किसी व्यक्ति को विधायिका की अवमानना के लिए दोषी ठहराया गया हो, जमानत नहीं दी जा सकती। इस विशेष मामले में, यह बताया गया कि पक्षों के अधिवक्ताओं ने एक निश्चित समय पर आवेदन पर सुनवाई करने पर सहमति व्यक्त की थी, लेकिन फिर भी सदन और अन्य प्रतिवादी सुनवाई के समय अनुपस्थित थे। इन परिस्थितियों में न्यायालय ने जमानत दी और इसलिए न्यायाधीशों द्वारा किसी भी प्रकार की अवमानना का प्रश्न ही नहीं उठाया। वाद पर अवलोकन:

हम जैसे आम लोगों के लिए दोनों पक्षों के प्रख्यात न्यायविदों द्वारा उठाए गए मुद्दों की कानूनी पेचीदगियों में उलझना और इन तर्कों के सही या गलत होने पर निर्णय देना अनुचित होगा। इसलिए हम इस विवाद के राजनीतिक और संवैधानिक पहलुओं पर एक आम आदमी के दृष्टिकोण से कुछ टिप्पणियाँ करके ही संतुष्ट रहेंगे।

विवाद का निष्पक्ष मूल्यांकन करने के लिए कुछ मूलभूत तथ्यों और सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक है। ये इस प्रकार हैं:-

(1) भारत एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य है और लोकतांत्रिक जीवन शैली की आवश्यकताओं को राज्य के सभी मामलों में सर्वोपरि महत्व दिया जाना चाहिए।

(2) संविधान हमारे लोकतंत्र की सत्ता का मूल स्रोत है,

(3) जैसा कि हमारा संविधान लिखा गया है और संघीय प्रकृति का है, संविधान सर्वोच्च है और सरकार के सभी अंग, कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका संविधान के अधीन हैं और संविधान द्वारा शासित हैं।

(4) ब्रिटेन के विपरीत, संप्रभुता संसद में निहित नहीं है, बल्कि संविधान में निहित है और संविधान की व्याख्या करने की शक्ति केवल न्यायपालिका में निहित है, जो इसकी संरक्षक और अभिभावक है।

(5) अतः अपने कर्तव्यों के निर्वह में न्यायपालिका की स्वतंत्रता की सर्वोच्च आवश्यकता उत्पन्न होती है।

(6) विधायिका को अपमान और बाधा के विरुद्ध अपने कठिन कार्य के निष्पादन में अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए कुछ विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ भी प्राप्त हैं।

(7) विधायिका और न्यायपालिका लोकतंत्र के केवल पूरक अंग हैं, एक दूसरे के विरोधी नहीं।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान मामले में उत्पन्न हुई कठिनाई को हल करने का एक संतोषजनक तरीका खोजा जा सकता है। इन तथ्यों को विचाराधीन घटनाक्रम पर लागू करते हुए, यदि केशव सिंह ने उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष को कोई पत्र भेजा होता, जिसे विधानसभा के विशेषाधिकार का उल्लंघन माना जाता, तो विधानसभा के पास निश्चित रूप से उन्हें अदालत में तलब करने और सदन की गरिमा और सम्मान को बनाए रखने के लिए उन्हें फटकार लगाने का अधिकार था। लेकिन भले ही सदन को सात दिन के कारावास का निर्विवाद अधिकार था, किसी शक्ति का अस्तित्व उसे मनमाने ढंग से दंडित करने का औचित्य नहीं देता, उसे सात दिन के कारावास की सजा जैसी कठोर सजा का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं थी। किसी शक्ति का अस्तित्व आवश्यक रूप से कोई

कानूनी सीमा न होने का औचित्य नहीं देता। यह कहा गया है कि यदि संसद ब्रिटेन में सभी नीली आंखों वाले शिशुओं की हत्या का प्रावधान करने वाला कानून पारित करती है, तो ऐसे कानून को पूरी तरह से वैध कानून माना जाएगा, लेकिन क्या यह कल्पना की जा सकती है कि संसद कभी भी अपनी संप्रभु शक्ति का ऐसा प्रदर्शन करने के बारे में सोचेगी? यहां तक कि पूर्णतः वैध शक्तियों का प्रयोग भी उचित संयम और उत्तरदायित्व की भावना के साथ किया जाना चाहिए। यह आशंका है कि इस मामले में सारी समस्या दोनों पक्षों के तर्कसंगत दृष्टिकोण पर भावनात्मक आवेश हावी होने के कारण उत्पन्न हुई। जब श्री सिंह ने अपने अधिवक्ता श्री बी. सोलोमन के माध्यम से लखनऊ स्थित उत्तर प्रदेश उच्च न्यायालय की खंडपीठ में याचिका दायर करवाई, तो उन्होंने संविधान के तहत प्रदत्त अपने अधिकार का प्रयोग किया, जिसके अंतर्गत वे उच्च न्यायालय से बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका जारी करने का अनुरोध कर सकते हैं। उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ ने भी संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रदत्त अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका जारी की। श्री बी. सोलोमन, एक अधिवक्ता होने के नाते, अपने पेशे के सामान्य पालन के अंतर्गत, सभी न्यायालयों में पैरवी करते हुए, अपने मुक्किल को उसके मौलिक अधिकार के कथित उल्लंघन के लिए न्यायालय में राहत हेतु कानूनी सहायता प्रदान करने का अधिकार और कर्तव्य रखते थे। उत्तर प्रदेश विधानमंडल की ओर से यह तर्क दिया गया है कि इन सभी पक्षों द्वारा दावा किया गया उक्त अधिकार अनुच्छेद 194 (3) के प्रावधानों द्वारा वर्जित है, जो संविधान के प्रारंभ में इंग्लैंड के हाउस ऑफ कॉमन्स की शक्तियों, विशेषाधिकारों आदि को विधानमंडल को प्रदान करता है, और इस प्रकार इन सभी पक्षों ने अपने कृत्य द्वारा इसके निर्विवाद विशेषाधिकार को चुनौती देकर इसके विशेषाधिकार का उल्लंघन किया है। तदनुसार, यह तर्क दिया गया कि विधानसभा द्वारा दो न्यायाधीशों और अधिवक्ता को "हिरासत में" पेश करने और सदन की अवमानना के लिए श्री सिंह को पुनः गिरफ्तार करने के लिए सामान्य वारंट जारी करना उचित था। दो न्यायाधीशों द्वारा याचिका दायर किए जाने पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने विधानसभा के प्रस्ताव के कार्यान्वयन पर रोक लगाने और न्यायाधीशों के विरुद्ध वारंट जारी करने पर रोक लगाने का अंतरिम आदेश जारी किया, इस आधार पर कि अनुच्छेद 226 के प्रावधान अनुच्छेद 194 (3) के तहत सदन के विशेषाधिकारों पर वरीयता रखते हैं और आगे यह कि अनुच्छेद के तहत... अनुच्छेद 211 के तहत न्यायाधीशों के अपने कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान उनके विरुद्ध वारंट जारी करने के विधायिका के अधिकार क्षेत्र को समाप्त कर दिया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में अनुच्छेद 194 (3) के अंतर्गत विधायिकाओं की शक्तियों और विशेषाधिकारों के दायरे और सीमा के संबंध में उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण का समर्थन किया है। इस प्रकार, विवाद में शामिल पक्षों द्वारा संबंधित अनुच्छेदों की व्याख्याओं में स्पष्ट विरोधाभास है। अतः हमें लगता है कि अनुच्छेदों की भाषा में कुछ त्रुटि है जिसके कारण यह सारा विवाद उत्पन्न हुआ है और जिसे संवैधानिक संशोधन द्वारा या अनुच्छेद 194 (3) में परिकल्पित विधान द्वारा दूर किया जाना चाहिए, जिसमें विधायिकाओं की शक्तियों, विशेषाधिकारों आदि को परिभाषित किया गया हो, ताकि विधायिका और न्यायपालिका के बीच अनुचित संघर्ष की पुनरावृत्ति न हो। न्यायपालिका और विधायिका के संबंधित अधिकारक्षेत्रों के बारे में विधायिका की शक्तियों और विशेषाधिकारों के संबंध में दोनों में से किसी भी दृष्टिकोण को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे एक ओर न्यायपालिका की स्वतंत्रता और नागरिकों के मौलिक अधिकारों का हनन होगा, तो दूसरी ओर विधायिका के विशेषाधिकारों का हनन होगा। दोनों ही मामलों में संविधान का सुचारु संचालन बाधित होगा। शायद बेहतर तरीका यह होगा कि संसद के माध्यम से केंद्रीय कानून पारित करके संसद सहित सभी विधायिकाओं के विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध किया जाए। यह ध्यान दिया जाएगा कि अनुच्छेद 194 (3) में संविधान निर्माताओं ने इस संबंध में विधायिका द्वारा शीघ्र कार्रवाई की परिकल्पना की थी और इस प्रकार के संहिताकरण तक, कानून द्वारा, शक्तियां और विशेषाधिकार केवल एक संक्रमणकालीन उपाय के रूप में ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स के पास ही रहेंगे। विधायी अधिनियमन में भविष्य में प्रश्न पर विवाद उठाने के लिए सभी संभावित खामियों को दूर करने के लिए उचित सावधानी बरती जानी चाहिए और इसमें वर्तमान मामले में शामिल प्रख्यात न्यायविदों की राय से मूल्यवान मार्गदर्शन प्राप्त किया जाएगा।

उदाहरण के लिए, विधानमंडलों की ओर से दिए गए इस तर्क में पर्याप्त सार है कि चूंकि सदन के विशेषाधिकारों का उल्लेख अनुच्छेद 194 (3) में विशिष्ट रूप से नहीं किया गया है, इसलिए सदन के विशेषाधिकार आदि, जिनमें इन विशेषाधिकारों के दायरे और सीमा को निर्धारित करने की शक्ति और किसी व्यक्ति द्वारा किसी विशेषाधिकार के उल्लंघन के मामले में अवमानना का दंड देने की शक्ति शामिल है, और अवमानना कार्यवाही की न्यायिक समीक्षा को छोड़कर, पूरी तरह से भारतीय विधानमंडलों को हस्तांतरित हो जाते हैं। यह तर्क भी पर्याप्त है कि चूंकि इस अनुच्छेद से पहले "संविधान

के प्रावधानों के अधीन" वाक्यांश नहीं है, जैसा कि कई अन्य अनुच्छेदों और यहां तक कि अनुच्छेद 194 (1) में भी है, इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि विशेषाधिकार अनुच्छेद 226 के प्रावधानों द्वारा सीमित नहीं थे।

संविधान के संपादक-मंडल के अध्यक्ष और संविधान के मुख्य निर्माता स्वर्गीय डॉ. अंबेडकर के भाषण का हवाला देते हुए अध्यक्ष श्री हुकुम सिंह ने कहा कि संविधान सभा का स्पष्ट उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि जब भी संसद किसी को कारावास देने के विशेषाधिकार का प्रयोग करे, तो न्यायालयों को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई संविधान की वर्तमान व्याख्या इस उद्देश्य को प्रभावी नहीं बनाती है, इसलिए सरकार को संविधान में संशोधन के लिए कदम उठाने चाहिए।

दूसरी ओर, यह तर्क काफी तर्कसंगत रूप से दिया गया है कि इस व्याख्या का अर्थ अनुच्छेद 226 के अंतर्गत नागरिकों के मौलिक अधिकारों का गंभीर हनन होगा, जिससे एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में भारत का स्वरूप प्रभावित होगा। यह व्याख्या भारतीय संविधान के लिखित और संघीय स्वरूप के कारण ब्रिटिश संसद और भारतीय विधानमंडलों की स्थिति में अंतर की अपर्याप्त समझ पर आधारित है। यह भी बताया गया कि विधानमंडलों को प्रदत्त किसी भी शक्ति या विशेषाधिकार के पक्ष में कोई विशिष्ट अपवाद न होने के कारण, अनुच्छेद 32 और 226 को इस प्रकार समझा जाना चाहिए कि ये अनुच्छेद नागरिकों को उनके मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के विरुद्ध राहत प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार प्रदान करते हैं।

स्पष्ट रूप से परस्पर विरोधी दावों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए एक सूत्र विकसित करना होगा। अन्य सभी विवादास्पद मुद्दों को सुलझाने और उन्हें विवाद के दायरे से बाहर रखने के लिए भी इसी प्रकार के दृष्टिकोण की आवश्यकता है। कांग्रेस संसदीय दल द्वारा इस मामले की जांच के लिए नियुक्त उप-समिति में एक मत यह है कि विशेषाधिकारों को कानून या संवैधानिक संशोधन द्वारा संहिताबद्ध करने के बजाय उन्हें यथावत रखना बेहतर होगा। हमारा मानना है कि इस मत के समर्थन में दावा किए गए तरलता और लचीलेपन के लाभ, संभावित टकराव और परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली कलह और दुर्भावना की बुराइयों से कहीं अधिक होंगे, जिसका कड़वा अनुभव हमने इस विशेष मामले में किया है। इसके अलावा, हमारा संविधान लिखित होने के कारण, विभिन्न प्रावधानों के अर्थ और महत्व को यथासंभव स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए। स्वीकृत रूप से, संविधान और कानूनों में भाषा की अत्यंत सटीकता के साथ, संविधान पूर्णतः त्रुटिरहित नहीं हो सकता और इसका सुचारु संचालन अंततः इसे संचालित करने वाले लोगों पर निर्भर करता है। क्योंकि अंततः, लोकतांत्रिक सरकार एक सहयोगात्मक उद्यम है और जब तक आपसी सामंजस्य की भावना, सरकार के विभिन्न अंगों के बीच टीम भावना और जनता के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए इसे चलाने की इच्छाशक्ति न हो, तब तक कोई भी संविधान, चाहे वह कितना भी परिपूर्ण और संतुलित क्यों न हो, काम नहीं कर सकता। इस संदर्भ में हमें सर्वोच्च न्यायालय की विशेष पीठ द्वारा अपने निर्णय के अंतिम भाग में व्यक्त की गई चेतावनी पर ध्यान देना चाहिए, जो इस प्रकार है:-

यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि अवमानना के लिए दंड देने की शक्ति का प्रयोग हमेशा सावधानी, बुद्धिमत्ता और विवेक के साथ किया जाना चाहिए। इस शक्ति का बार-बार या अंधाधुंध उपयोग न्यायालयों या विधायिकाओं की गरिमा या प्रतिष्ठा को बनाए रखने में सहायक नहीं होगा। इन विशेष शक्तियों के बारे में कही गई बातें सार्वभौमिक रूप से लागू होनी चाहिए, यदि हमारे जैसे संविधान को, जिसमें नियंत्रण और संतुलन की प्रणाली निहित है, सुचारु रूप से कार्य करना है।

# कानूनी तंत्र और प्रक्रियाएँ: कथित चिकित्सीय लापरवाही के संदर्भ में भारतीय विधि और अदालती निर्णयों की समीक्षा

रोहित गोयल<sup>1</sup>, महेशनाथ अमरनाथ<sup>2</sup>, रंजीत इमैनुएल जेम्स<sup>3</sup>, आरथी अमरनाथ<sup>4</sup>

1. विभाग – फोरेंसिक मेडिसिन एवं टॉक्सिकोलॉजी, श्री लक्ष्मी नारायण इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज़, पुडुचेरी, भारत
2. अधिवक्ता, मद्रास उच्च न्यायालय, 16/37 फ्लैट नं. S2, त्यागराजा एलाइट, 3rd ट्रस्ट क्रॉस, मंडैवेल्लिपक्कम, चैन्नई-600004, तमिलनाडु, भारत
3. विभाग – फोरेंसिक मेडिसिन एवं टॉक्सिकोलॉजी, क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज, आइडा स्कडर रोड, वेल््लोर-632004, तमिलनाडु, भारत
4. विभाग – फोरेंसिक मेडिसिन एवं टॉक्सिकोलॉजी, आरुपदई वेदु मेडिकल कॉलेज, किरुमंपक्कम-607402, पुडुचेरी, भारत

## भूमिका

कानूनी दृष्टिकोण से “लापरवाही” अथवा ‘मालप्रैक्टिस’ का अभिप्राय है – “कर्तव्य के उल्लंघन का ऐसा कृत्य जो किसी समुचित व्यक्ति (जिसके आचरण को सामान्य मानव व्यवहार को नियंत्रित करने वाले विचार मार्गदर्शित करते हैं) द्वारा किया जाना चाहिए था परंतु छोड़ा गया, या वह कार्य करना जिसे कोई सावधान और विवेकी व्यक्ति नहीं करता।” यह विधिक सिद्धांत किसी भी पेशेगत कार्य से संबंधित विवादों के निपटारे में प्रयुक्त होता है और इसका औचित्य चिकित्सीय व्यवहार पर भी समान रूप से लागू होता है। चिकित्सकीय कार्यों के संदर्भ में इसे ‘चिकित्सीय लापरवाही’ कहा जाता है।

इतिहास में अनेक शताब्दियों से चिकित्सीय लापरवाही के उदाहरण उपलब्ध हैं—इसके विधिक स्वीकार, उपचार, दण्ड और प्रतिपूर्ति का उल्लेख भी मिलता है। आधुनिक समय में यह विषय अधिक महत्व प्राप्त कर चुका है और चिकित्सकीय लापरवाही को एक प्रकार के ‘महामारी’ स्वरूप में संबोधित किया जाने लगा है। इसके अनेक कारण हैं, किन्तु प्रमुख तत्व ‘दोषारोपण की संस्कृति (culture of blame)’ का उभार है। दूसरी ओर पीड़ित पक्ष के लिए लापरवाही संबंधी वाद कई बार सुधार या प्रतिकर प्राप्त करने का एकमात्र उपाय बन जाते हैं।

चिकित्सक इस तथाकथित महामारी का सामना कर रहे हैं। यद्यपि चिकित्सा क्षेत्र में कुछ अपवादस्वरूप अनुचित आचरण वाले लोग हो सकते हैं, परंतु संपूर्ण चिकित्सक समुदाय को समान रूप से दोषी ठहराना अनुचित होगा। डॉक्टर निरंतर विकसित होती चिकित्सीय ज्ञान-संपदा एवं कौशल के साथ स्वयं को अद्यतन रखने का प्रयास करते हैं, साथ ही उन्हें लाभ-उन्मुख चिकित्सा क्षेत्र, अधिभारित सरकारी अस्पतालों, तथा अपर्याप्त स्वास्थ्य-संरचना के दबावों का सामना करना पड़ता है। प्रायः डॉक्टर ही वह एकमात्र व्यक्ति होता है जो सीधे रोगी के संपर्क में रहता है, अतः उपचार में किसी भी प्रकार की कमी या प्रतिकूल परिणाम का आरोप चिकित्सक पर लग जाता है।

एक डॉक्टर हर रोगी के उपचार में समय, श्रम और कौशल लगाता है। जब उपचार विफल होता है अथवा प्रतिकूल परिणाम उत्पन्न होता है, तो डॉक्टर स्वयं अपने निर्णयों पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं जिससे मानसिक आघात होता है। चिकित्सीय लापरवाही वाद केवल आर्थिक परिणामों तक सीमित नहीं रहते, बल्कि चिकित्सक पर शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी डालते हैं। Wu इत्यादि ने ऐसी स्थिति को वर्णित करने हेतु स्वास्थ्य-कर्मी को ‘द्वितीय पीड़ित (2nd victim)’ कहा—अर्थात् चिकित्सीय उपचार से उत्पन्न प्रतिकूल घटना का प्रभाव केवल रोगी (प्रथम पीड़ित) तक सीमित नहीं रहता बल्कि डॉक्टर भी उससे प्रभावित होता है। यह आघात विधिक प्रक्रिया के ज्ञान के अभाव और भय से और बढ़ जाता है। वर्तमान चिकित्सीय कार्यप्रणाली में डॉक्टर को चिकित्सीय ज्ञान एवं कौशल के साथ-साथ विधिक प्रक्रियाओं का भी अनुमानित ज्ञान होना आवश्यक है, विशेषकर इसलिए क्योंकि चिकित्सा-कानून विशिष्ट प्रकृति का होता है और कई बार इसके विधिक सिद्धांत सामान्य दीवानी एवं आपराधिक वादों से भिन्न होते हैं।

इस लेख के माध्यम से हमारा उद्देश्य चिकित्सकीय लापरवाही से संबंधित कानूनी प्रक्रियाओं की समझ में डॉक्टरों की सहायता हेतु ज्ञान-अंतर को कम करना है। प्रथम चरण में हम चिकित्सीय लापरवाही से

संबंधित भारतीय विधान, अदालती निर्णय (1995 के बाद), वैज्ञानिक साहित्य तथा सरकारी आदेशों का विश्लेषण करते हैं। द्वितीय चरण में हम शिकायतों के निस्तारण की विधि, न्यायालय/अधिकरण द्वारा प्रयुक्त अन्वेषण उपकरणों एवं विभिन्न राहतों का संक्षेप प्रस्तुत करते हैं। अंत में, हम ऐसे दिशानिर्देश प्रस्तावित करते हैं जो चिकित्सकों को चिकित्सीय लापरवाही के आरोपों से निपटने में सहायक हो सकते हैं।

### प्रमाण का भार: किस पर?

जब कोई व्यक्ति यह दावा करता है कि उसे उपचाररत डॉक्टर की लापरवाही से हानि हुई है और वह विधिक उपचार चाहता है, तो डॉक्टर की लापरवाही सिद्ध करना उसी व्यक्ति का दायित्व होता है। राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग (NCDRC) ने कन्हैया कुमार सिंह प्रकरण एवं कलकत्ता मेडिकल रिसर्च इंस्टिट्यूट प्रकरण में यह प्रतिपादित किया कि चिकित्सीय लापरवाही को सिद्ध करना आवश्यक है; इसे अनुमान से स्वीकार नहीं किया जा सकता और सेवा में कमी तथा लापरवाही सिद्ध करने का भार शिकायतकर्ता पर है। इस सिद्धांत को उपासना अस्पताल प्रकरण में स्थापित विधि के रूप में संदर्भित किया गया।

ऐसी कुछ परिस्थितियाँ होती हैं जिनमें रेस इप्सा लोक्विटोर (अर्थात् तथ्य स्वयं ही बोलते हैं) सिद्धांत लागू होता है। उदाहरणस्वरूप – गलत अंग का विच्छेदन, गलत रक्त समूह का रक्तसंचार, शरीर में पट्टी/उपकरण का छूट जाना आदि। ऐसे मामलों में दीवानी वाद में प्रमाण का भार प्रतिवादी पर स्थानांतरित हो सकता है। जेकब मैथ्यू प्रकरण में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि रेस इप्सा लोक्विटोर साक्ष्य का नियम है जो दीवानी मामलों में प्रमाण भार निर्धारण में सहायक होता है। आपराधिक लापरवाही में इसका उपयोग सीमित है और केवल आरोप-विचारण के स्तर पर लागू होता है। आपराधिक दोषसिद्धि केवल इसी सिद्धांत के आधार पर नहीं की जा सकती।

### वाद-पूर्व आवश्यकता

रोगी/परिजन के लिए प्रथम कदम यह होता है कि जिस स्वास्थ्य-संस्था में कथित लापरवाही हुई है वहाँ से उपचार-अभिलेख प्राप्त किए जाएँ। पीड़ित व्यक्ति/वैधानिक प्रतिनिधि/जाँच अधिकारी को लिखित आवेदन देकर रोगी के अभिलेखों की प्रतिलिपि माँगनी चाहिए। भारतीय चिकित्सा परिषद (MCI) विनियम (2002) के अनुसार पंजीकृत चिकित्सकों के लिए यह अनिवार्य है कि वे सभी भर्ती रोगियों के अभिलेख कम से कम तीन वर्ष तक सुरक्षित रखें और यदि रोगी/अधिकृत व्यक्ति/वैधानिक प्राधिकरण द्वारा माँग की जाए तो 72 घंटे के भीतर उसकी प्रतिलिपि उपलब्ध कराएँ। यह दायित्व राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा जारी रोगी अधिकार पत्र में भी परिलक्षित है। इस दिशा-निर्देश का अनुपालन न करना प्रायः न्यायालयों द्वारा गंभीरता से लिया जाता है। महाराजा अग्रसेन अस्पताल प्रकरण में अस्पताल द्वारा दस्तावेज उपलब्ध कराने में दो वर्ष का विलंब हुआ, जिसे उच्चतम न्यायालय ने MCI विनियमों का उल्लंघन बताते हुए 'गंभीर पेशागत दुराचार' एवं 'सेवा में कमी' माना।

चिकित्सीय अभिलेखों में किसी प्रकार की छेड़छाड़/कटिंग/ओवरराइटिंग को वाद-पश्चात टालना चाहिए क्योंकि इससे भारतीय दंड संहिता की धारा 201 (साक्ष्य-विनाश) के अंतर्गत आपराधिक कार्यवाही हो सकती है।

स्वास्थ्य अभिलेखों को पृष्ठांकित कर पूर्णता की जाँच की जाती है और यदि कोई दस्तावेज अपूर्ण पाए जाएँ तो उसी प्रकार के लिखित आवेदन से पुनः प्राप्त किए जाते हैं। तत्पश्चात वादी पक्ष के विधिक परामर्शदाता इन्हें अध्ययन कर उपचार-में-कमी संबंधी पहलुओं और गवाहों (जैसे परिजन) के कथनों के आधार पर वादी की शिकायत का प्रारूप तैयार करते हैं।

### कहाँ और कैसे?

कथित चिकित्सीय लापरवाही के किसी मामले में जाँच और विधिक प्रक्रियाएँ इस बात पर निर्भर करती हैं कि किस प्रकार का वाद दायर किया गया है। किस प्रकार का वाद दायर किया जाए, यह सामान्यतः निम्नलिखित कारकों पर आधारित होता है:

- लापरवाही की प्रकृति अथवा उसकी तीव्रता,
- रोगी/प्रतिनिधि द्वारा विधिक कार्यवाही से अपेक्षित परिणाम, तथा
- वह इकाई (व्यक्ति अथवा संस्था) जो लापरवाही के लिए उत्तरदायी है।

सामान्यतः चिकित्सीय लापरवाही के मामलों में राहत का मार्ग दीवानी (civil) या आपराधिक (criminal) या दोनों हो सकता है। प्रत्येक विधिक मार्ग के परिणाम भिन्न होते हैं। दीवानी कार्यवाही का उद्देश्य आर्थिक प्रतिपूर्ति (damages) प्रदान करना होता है, जिसमें अनुशासनात्मक कार्रवाई सम्मिलित हो सकती है या नहीं भी। इसके विपरीत, आपराधिक कार्यवाही में दोष सिद्ध होने पर दण्ड मिलता है, जैसे – कारावास, जुर्माना तथा अन्य दण्डात्मक उपाय (जैसे परिसंपत्ति/संपत्ति की जब्ती आदि)।

यहाँ उल्लेखनीय है कि दीवानी और आपराधिक कार्यवाहियाँ स्वतंत्र हैं और दोनों को एक साथ संचालित किया जा सकता है। Dr. J.J. Merchant प्रकरण में NCDRC ने वह तर्क अस्वीकार किया जिसमें कहा गया था कि आपराधिक मुकदमे की लंबितावस्था में दीवानी वाद को रोकना चाहिए। आयोग ने यह स्पष्ट किया कि – “कोई सार्वभौमिक विधि नहीं है कि आपराधिक मुकदमा लंबित होने पर दीवानी वाद अवश्य ही स्थगित किया जाए।”

(तालिका-1)

विवरण	कार्रवाई			आपराधिक कार्यवाही
	वांछित परिणाम	प्रतिकर	प्रतिकर	प्रतिकर
शिकायत जहाँ दर्ज की जाती हो	दीवानी अदालत	मुआवजे की मांग के आधार पर जिला/राज्य/राष्ट्रीय आयोग नियुक्त किया जाएगा।	व्यक्तिगत: राज्य चिकित्सा परिषद संस्था: नैदानिक प्रतिष्ठान आयोग	पुलिस स्टेशन
कौन शिकायत कर सकता है?	पीड़ित व्यक्ति या अधिकृत परिचारक	पीड़ित व्यक्ति या अधिकृत परिचारक	-	-
शिकायत दर्ज करने के लिए क्या आवश्यक है?	शिकायत के रूप में शपथ पत्र और आवश्यक दस्तावेज	शिकायतकर्ता द्वारा शिकायत, दस्तावेजों और हलफनामे।	स्वतः संज्ञान या औपचारिक लिखित शिकायत।	अपराध के संबंध में पुलिस में औपचारिक शिकायत।
सबूत पेश करने का भार किस पर है?	रोगी। यदि रेस इप्सा लोक्विटोर लागू होता है तो डॉक्टर	रोगी। यदि रेस इप्सा लोक्विटोर लागू होता है तो डॉक्टर	-	अभियोजन पक्ष

आपराधिक विधि में उपचार

भारतीय विधि के अनुसार, आपराधिक न्याय प्रणाली में चिकित्सीय लापरवाही की जाँच, अभियोजन या दण्ड हेतु कोई पृथक विशेष प्रावधान नहीं है। सामान्यतः चिकित्सीय लापरवाही को भारतीय दण्ड संहिता के सामान्य उपबन्धों के संदर्भ में मापा जाता है और यह अन्य प्रकार की लापरवाही के समानांतर चलता है। उदाहरणतः, लापरवाही एवं उतावलेपन के कारण मृत्यु IPC की धारा 304A के अंतर्गत दण्डनीय अपराध है। यहाँ विधि चालक और चिकित्सक दोनों की लापरवाही में भेद नहीं करती। इसी प्रकार धारा 337 और 338 IPC में लापरवाही से उत्पन्न उपहति और गंभीर उपहति पर एक समान प्रावधान लागू होते हैं।

किन्तु उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न मामलों में यह प्रश्न संबोधित किया है कि आपराधिक लापरवाही किस स्थिति में मानी जाएगी। डॉ. सुरेश गुप्ता प्रकरण में न्यायालय ने कहा:

“जब रोगी चिकित्सा उपचार या शल्य क्रिया के लिए सहमत होता है, तो हर त्रुटिपूर्ण कार्य को ‘आपराधिक’ नहीं कहा जा सकता। इसे तभी ‘आपराधिक’ कहा जा सकता है जब चिकित्सक अत्यधिक अकुशलता, घोर उपेक्षा या रोगी की सुरक्षा के प्रति उदासीनता प्रदर्शित करे – जो घोर अज्ञानता या अत्यधिक लापरवाही से उत्पन्न हो। केवल निर्णय में त्रुटि या आकस्मिकता के कारण रोगी की मृत्यु पर आपराधिक दायित्व नहीं ठहराया जा सकता। सामान्य चूक या सावधानी की कमी दीवानी दायित्व उत्पन्न कर सकती है परन्तु आपराधिक दायित्व हेतु पर्याप्त नहीं।”

उच्चतम न्यायालय ने जेकब मैथ्यू प्रकरण में समान विचार व्यक्त करते हुए आपराधिक मनःस्थिति (दोषी मानसिक तत्व) की अनिवार्यता रेखांकित की और कहा:

“किसी लापरवाही का अपराध सिद्ध होने हेतु आपराधिक मनःस्थिति सिद्ध होना आवश्यक है। आपराधिक लापरवाही हेतु लापरवाही का स्तर अत्यधिक ऊँचा – अर्थात् ‘घोर लापरवाही’ – होना चाहिए।”

परंतु एक विशेष अनुमति याचिका में न्यायालय ने यह कहा कि:

“चिकित्सीय लापरवाही में आपराधिक मनःस्थिति के अभाव में भी अपराध बन सकता है।”

और जेकब मैथ्यू प्रकरण के विशेषज्ञ मत संबंधी दिशानिर्देशों का पालन करने का निर्देश दिया।

कथित आपराधिक लापरवाही की जाँच पर उच्चतम न्यायालय के निर्देश जेकब मैथ्यू प्रकरण में उच्चतम न्यायालय ने चिकित्सकों के विरुद्ध आपराधिक शिकायतों के लिए निम्न दिशानिर्देश प्रस्तुत किए:

1. निजी शिकायत तभी विचारणीय जब शिकायतकर्ता किसी सक्षम चिकित्सक की विश्वसनीय राय प्राथमिक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करे।
2. केवल आरोप लगाए जाने भर से चिकित्सक की नियमित गिरफ्तारी न हो। गिरफ्तारी वहीं हो जब जाँच की प्रगति, साक्ष्य-संग्रह, या अभियोजन से बचने की आशंका के कारण आवश्यक हो।

टिप्पणी: ललिता कुमारी (2013) में न्यायालय ने कहा कि प्रारंभिक जाँच में प्राथमिक साक्ष्य न मिलने पर FIR अनिवार्य नहीं। यदि मेडिकल बोर्ड लापरवाही पाता है तो पुलिस मामला दर्ज कर अंतिम रिपोर्ट / आरोपपत्र न्यायालय में दाखिल कर सकती है। चिकित्सक हेतु उपलब्ध उपचार

यदि चिकित्सक को प्रतीत होता है कि आरोप आपराधिक लापरवाही के स्तर तक नहीं पहुँचते तो वह धारा 482 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत उच्च न्यायालय में अभिखंडित करने हेतु जा सकता है, जैसे डॉ. मोहम्मद आजम हसीन प्रकरण में। राहत न मिलने पर उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील का मार्ग उपलब्ध है (दलजीत सिंह गुजराल प्रकरण), जयश्री इंगोले प्रकरण में न्यायालय ने कहा कि गंभीर लापरवाही दीवानी दायित्व तो उत्पन्न कर सकती है पर आपराधिक दायित्व नहीं।

### प्रारंभिक जाँच एवं मेडिकल बोर्ड की भूमिका

सूचना मिलने पर पुलिस प्रारंभिक जाँच करती है, गवाहों व शिकायतकर्ता के बयान लेती है तथा उपचार अभिलेख प्राप्त करती है।

- मृत्यु होने पर शव पुलिस को सौंपा जाता है और पोस्टमॉर्टम कराया जाता है।
- पंचायतनामा + अन्य चिकित्सा साक्ष्य मेडिकल बोर्ड को भेजे जाते हैं।
- मेडिकल बोर्ड दोनों पक्षों को सुनकर और अभिलेख देखकर यह मत देता है कि चिकित्सीय लापरवाही थी या नहीं।
- बोर्ड के मतानुसार पुलिस मामला बंद कर सकती है या 304A/337/338 IPC अथवा अन्य प्रासंगिक धाराओं में मामला दर्ज कर सकती है।

### दीवानी उपचार

लापरवाही दीवानी विधि में टॉर्ट का सिद्ध सिद्धांत है जिसका आधार प्रतिपूर्ति है। रोगी दीवानी न्यायालय में वाद दायर कर क्षतिपूर्ति मांग सकता है। न्यायालय CPC (1908) व Evidence Act के अनुसार कार्य करता है। वाद की फीस क्षतिपूर्ति राशि पर आधारित होती है। निर्णय में या तो प्रतिपूर्ति दी जाती है या वाद खारिज होता है। अपील उच्च न्यायालय और तत्पश्चात उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है।

1995 के इंडियन मेडिकल एसोसिएशन निर्णय से पहले लगभग सभी मामले दीवानी न्यायालयों में चलते थे। आशीष मजूमदार (1991) प्रकरण इसका उदाहरण है जहाँ क्षतिपूर्ति का विवाद 2014 तक सर्वोच्च न्यायालय में चला।

### उपभोक्ता विधि उपचार

इंडियन मेडिकल एसोसिएशन निर्णय (1995) के बाद चिकित्सीय सेवा को उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के दायरे में लाया गया। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का उद्देश्य त्वरित न्याय एवं सामान्य नागरिक के लिए प्रक्रिया को सरल बनाना था। 2019 में नया उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 2019 लागू हुआ, जिसमें वैकल्पिक विवाद निस्तारण एवं मध्यस्थता के प्रावधान शामिल हैं।

### उपभोक्ता मंच में प्रक्रिया

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (2019) के अनुसार यदि समझौते की संभावना है तो मामला मध्यस्थता हेतु भेजा जा सकता है। नियमों में चिकित्सीय लापरवाही से मृत्यु/गंभीर हानि को अपवाद माना गया है जिसमें मध्यस्थता नहीं होगी। मध्यस्थता विफल होने पर मामला नियमित प्रक्रियानुसार चलेगा और प्रतिपूर्ति या खारिजी का आदेश पारित होगा। अपील राज्य आयोग, राष्ट्रीय आयोग, और अंततः उच्चतम न्यायालय तक संभव है।

### राज्य चिकित्सा परिषद की भूमिका

लापरवाही के अतिरिक्त दुराचार व अनुशासनात्मक कार्रवाई हेतु भी शिकायत की जा सकती है। राज्य चिकित्सा परिषद जाँच कर उचित दंडात्मक कदम उठा सकती है।

### विशेषज्ञ/मेडिकल पैनल की भूमिका

कानूनी पेशेवर चिकित्सा-विवरणों से परिचित नहीं होते, इसलिए विशेषज्ञ राय महत्वपूर्ण होती है। वी. किशन राओ प्रकरण में न्यायालय ने विशेषज्ञ के दो कार्य बताए—

- (1) तकनीकी मुद्दों को सरल रूप में प्रस्तुत करना, और
- (2) मानकों के आधार पर यह बताना कि लापरवाही हुई या नहीं।

मार्टिन डी'सूजा (2009) में जैकब मैथ्यू के दिशानिर्देशों को उपभोक्ता मंच तक विस्तारित किया गया, पर किशन राओ (2010) में कहा गया कि हर मामले में विशेषज्ञ राय आवश्यक नहीं, केवल जटिल मामलों में। वर्ष 2017 में भारतीय चिकित्सा परिषद और 2020 में राष्ट्रीय चिकित्सा आयोग द्वारा डॉक्टरों को निराधार अभियोजन से बचाने हेतु नए दिशा-निर्देश जारी हुए, जिनमें Forensic Medicine विभाग को नोडल विभाग बनाया गया और जांच की समय-सीमा घटाई गई।

संभागीय बोर्ड को समाप्त कर जिला राज्य बोर्ड प्रत्यक्ष अपील की व्यवस्था की गई।

हम अभी तक इन संशोधित दिशा-निर्देशों के प्रभाव को देख नहीं पाए हैं। तथापि, यदि पूर्ववर्ती प्रथाओं पर जाएँ तो यह स्पष्ट होता है कि राज्यों में मानकों की एकरूपता नहीं है। देश के विभिन्न भागों में चिकित्सीय लापरवाही की जांच प्रक्रिया कैसे संचालित होती है, इसका पता करने हेतु हमने अपने सहकर्मियों से व्यक्तिगत संचार द्वारा जानकारी प्राप्त की।

इस संबंध में विभिन्न राज्यों द्वारा जारी सरकारी आदेश तालिका-II में प्रस्तुत हैं।

राज्य जाँच	समीक्षा निकाय	एपेक्स निकाय	निर्णय हेतु समय-सीमा	पोस्टमॉर्टम
दिल्ली राज्य	चिकित्सा परिषद	जिला मेडिकल बोर्ड- नहीं	लागू नहीं	तीन फोरेंसिक विशेषज्ञों का पैनल
महाराष्ट्र	नहीं	हाँ	15 दिन	बहु-विषयक टीम
तमिलनाडु	लागू नहीं	लागू नहीं	लागू नहीं	फोरेंसिक विशेषज्ञों का पैनल
कनटिक	हाँ	नहीं	60 दिन	फोरेंसिक विशेषज्ञों का पैनल / बहु-विषयक टीम
हरियाणा	नहीं	हाँ (6- सदस्यीय बोर्ड)	लागू नहीं	लागू नहीं
पंजाब	नहीं	हाँ	लागू नहीं	बहु-विषयक टीम
केरल	नहीं	हाँ	30 दिन	फोरेंसिक विशेषज्ञों का पैनल

### निष्कर्ष एवं अनुशंसाएँ

चिकित्सीय लापरवाही विधि का एक विशिष्ट क्षेत्र है और भारतीय न्याय प्रणाली के लिए नए प्रकार की चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है। इस विषय पर किसी समर्पित विधान की अनुपस्थिति के कारण, न केवल रोगियों बल्कि चिकित्सा एवं विधि-दोनों क्षेत्रों के पेशेवरों के मध्य भी चिकित्सीय लापरवाही की समझ में अस्पष्टता बनी हुई है। जैसे-जैसे चिकित्सीय सेवाओं को नियंत्रित करने वाले कानून विस्तृत हो रहे हैं, शिकायतों के निस्तारण की प्रक्रिया को भी स्पष्ट, मानकीकृत, स्वीकार्य तथा आवश्यकता पड़ने पर सुधारित किया जाना चाहिए; क्योंकि इस संदर्भ में विलंब या पक्षपात पेशेवरों तथा समाज-दोनों के कार्यकलापों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकता है।

स्व-नियमन चिकित्सा पेशेवरिता का एक स्तम्भ है और यह चिकित्सा पेशेवर निकायों पर यह अतिरिक्त दायित्व डालता है कि वे चिकित्सीय लापरवाही के मामलों में सक्रिय भूमिका निभाएँ। इस विषय में अत्यधिक सावधानी अपेक्षित है, क्योंकि चिकित्सीय लापरवाही के आरोप का प्रभाव विवाद के केवल एक पक्ष तक सीमित नहीं रहता; बल्कि कई बार दोनों पक्ष एक साथ पीड़ित हो सकते हैं।

वर्तमान विचारण और व्यवहार को ध्यान में रखते हुए, हम निम्नलिखित अनुशंसाएँ प्रस्तुत करते हैं:

- राज्य चिकित्सा परिषदें एवं राष्ट्रीय चिकित्सा आयोग जैसे नियामक निकायों को एक टीम के रूप में मिलकर विभिन्न परिस्थितियों-जिसमें मृत्यु के परिणाम वाले मामले भी सम्मिलित हैं-में चिकित्सीय लापरवाही की जांच हेतु एक नीति निर्मित करनी चाहिए।

- राष्ट्रीय चिकित्सा आयोग द्वारा प्रकाशित दिशा-निर्देशों को राज्यों में समान रूप से अपनाया जाए तथा समय-समय पर अद्यतन किया जाए। राज्य सरकारों एवं संस्थागत प्रशासन को यह सुनिश्चित करने हेतु कदम उठाने चाहिए कि प्रक्रियाएँ तथा समय-सीमाएँ समान रूप से पालन की जाएँ।
- अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत तथा प्रकाशित जाँच-मानकों को भारत की आवश्यकताओं के अनुरूप परिष्कृत कर अपनाया जा सकता है।
- इन जाँच प्रक्रियाओं में अंतर्विषयक सहभागिता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। संबंधित विशेषज्ञताओं से आने वाले पेशेवरों को भी विशेषज्ञों की टीम में शामिल किया जाना चाहिए।



# आरक्षण नीति पर पुनर्विचार की आवश्यकता:

द्वारा - न्यायमूर्ति पंकज मित्तल

माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति पंकज मित्तल द्वारा यह कहा गया कि आरक्षण नीति पर नए सिरे से पुनर्विचार की आवश्यकता है और अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित लोगों के उत्थान के लिए नए तरीकों की जरूरत है।

कोटा प्रदान करने के लिए अनुसूचित जातियों के उप-वर्गीकरण के राज्यों के अधिकार पर बहुमत के निर्णय से सहमति जताते हुए, न्यायमूर्ति मित्तल ने कहा कि आरक्षण नीति की सफलता या विफलता के बावजूद, एक बात निश्चित है कि इसने न्यायपालिका पर सभी स्तरों पर, विशेष रूप से उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय पर भारी मुकदमेबाजी का बोझ डाल दिया है।

"संविधान के तहत और इसके विभिन्न संशोधनों द्वारा निहित आरक्षण की नीति पर नए सिरे से पुनर्विचार करने और शोषित वर्ग या दलितों या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग समुदायों से संबंधित व्यक्तियों की सहायता और उत्थान के लिए अन्य तरीकों को विकसित करने की आवश्यकता है।"

"जब तक कोई नया तरीका विकसित या अपनाया नहीं जाता, तब तक प्रचलित आरक्षण प्रणाली किसी वर्ग, विशेष रूप से अनुसूचित जाति के उप-वर्गीकरण की अनुमति देने की शक्ति के साथ क्षेत्र पर काबिज रह सकती है, क्योंकि मैं किसी मौजूदा इमारत को उसके स्थान पर नई इमारत बनाए बिना गिराने का सुझाव नहीं दूंगा, जो अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है," न्यायमूर्ति मित्तल ने एक अलग 51-पृष्ठीय निर्णय में लिखा।

न्यायमूर्ति मित्तल ने कहा कि संवैधानिक शासन में, कोई जाति व्यवस्था नहीं है और देश एक जातिविहीन समाज में प्रवेश कर चुका है, सिवाय शोषित वर्ग के व्यक्तियों, दलितों या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित लोगों को आरक्षण प्रदान करने के सीमित उद्देश्यों को छोड़कर।

"इसलिए, व्यक्तियों की उपरोक्त श्रेणियों की उन्नति के लिए कोई भी सुविधा या विशेषाधिकार जाति के अलावा पूरी तरह से अलग मानदंडों पर होना चाहिए, जैसे कि आर्थिक या वित्तीय कारक, जीवन स्तर, व्यवसाय और उनके निवास स्थान (शहरी या ग्रामीण) के आधार पर उनमें से प्रत्येक को उपलब्ध सुविधाएं।"

उन्होंने कहा, "आरक्षण, यदि कोई हो, केवल पहली पीढ़ी या एक पीढ़ी तक ही सीमित होना चाहिए और यदि परिवार में किसी भी पीढ़ी ने आरक्षण का लाभ उठाया है और उच्च स्तर प्राप्त किया है, तो आरक्षण का लाभ तार्किक रूप से दूसरी पीढ़ी को उपलब्ध नहीं होगा।" न्यायमूर्ति मित्तल ने कहा कि उन व्यक्तियों के वर्ग को बाहर करने के लिए समय-समय पर एक अभ्यास किया जाना चाहिए, जो आरक्षण का लाभ उठाने के बाद सामान्य श्रेणी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने लगे हैं।

शीर्ष अदालत ने 8 फरवरी को ई. वी. चिन्नेया निर्णय की समीक्षा की मांग करने वाली याचिकाओं पर अपना फैसला सुरक्षित रख लिया था, जिसमें 2004 में यह व्यवस्था दी गई थी कि सदियों से बहिष्कार, भेदभाव और अपमान सहने वाले सभी अनुसूचित जाति समुदाय एक सजातीय वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो उप-वर्गीकृत किए जाने में अक्षम हैं।

यह निर्णय ई. वी. चिन्नेया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में 2004 के पांच-न्यायाधीशों की संविधान पीठ के निर्णय पर पुनर्विचार करने के संदर्भ में आया है, जिसमें यह माना गया था कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति सजातीय समूह हैं और राज्य इन समूहों में अधिक वंचित और कमजोर जातियों को कोटे के भीतर कोटा प्रदान करने के लिए उन्हें आगे उप-वर्गीकृत नहीं कर सकते हैं।

# भारत में बलात्कार-विरोधी कानूनों की यात्रा

द्वारा - कृष्णदास राजगोपाल

छियालीस वर्ष बाद, जब सर्वोच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र में एक किशोर आदिवासी लड़की के साथ पुलिस हिरासत में हुए बलात्कार के मामले में दो पुलिसकर्मियों को यह कहते हुए दोषमुक्त कर दिया था कि शारीरिक चोटों के कोई स्पष्ट चिन्ह नहीं थे, इसलिए उसने 'यौन सम्बन्ध के लिए सहमति' दी होगी – भारत के मुख्य न्यायाधीश बी. आर. गवई ने उस निर्णय को "संस्था के लिए शर्म का क्षण" कहा। यह निर्णय सहमति को लेकर अत्यन्त प्रतिगामी और पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण को दर्शाता था, जिसने शक्ति, दबाव और असुरक्षा की उस सामाजिक पृष्ठभूमि को नकार दिया जिसमें यौन हिंसा अक्सर घटित होती है।

मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि तुकाड़म बनाम महाराष्ट्र राज्य (1979) का "पटेशान करने वाला" निर्णय एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ, क्योंकि इसने राष्ट्र को एकजुट कर विरोध के लिए प्रेरित किया – क्योंकि कानूनी व्यवस्था उन्हीं लोगों की गरिमा की रक्षा करने में विफल रही, जिनकी रक्षा के लिए वह बनाई गई थी। इस बरी होने की घटना ने भारत में महिला अधिकार आंदोलन को मजबूत बलात्कार-विरोधी कानूनों की ओर प्रेरित किया।

इसने संसद को दंड विधि में खामियों पर विचार करने, हिरासत में बलात्कार के विरुद्ध कानूनी सुरक्षा को मजबूत करने, दहेज निषेध अधिनियम के अंतर्गत दंड को कठोर बनाने, और परिवार न्यायालय अधिनियम लाने के लिए भी मजबूर किया। 1983 से लेकर 2023 में भारतीय न्याय संहिता (BNS) के अंतर्गत यौन अपराध संबंधी प्रावधानों में किए गए संशोधनों की श्रृंखला अपनी मूल प्रेरणा उसी "संस्थागत विफलता" से प्राप्त करती है जो मथुरा बलात्कार प्रकरण (तुकाड़म बनाम महाराष्ट्र राज्य) में उजागर हुई।

## मामले की यात्रा

वर्ष 1979 का निर्णय, जिसने हिरासत-बलात्कार की पीड़िता को और अधिक दोषी ठहराया, न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर के नंदिनी सत्पथी (1978) फैसले की स्याही सूखने से पहले ही सुना दिया गया था। न्यायालय ने, न्यायमूर्ति अय्यर के माध्यम से, महिलाओं को थाने बुलाने की प्रथा की निंदा की थी और कहा था कि महिला से पूछताछ केवल उसके निवास पर ही होनी चाहिए।

मथुरा बलात्कार मामले की घटना मार्च 1972 में हुई। बलात्कार पीड़िता, जो एक अनाथ थी और जिसकी आयु 14 से 16 वर्ष के बीच थी, उन चार लोगों में से एक थी जिन्हें रात में पुलिस स्टेशन बुलाया गया था। संक्षिप्त पूछताछ के बाद, उसे रुकने का आदेश दिया गया और अन्य लोगों को जाने दिया गया। उसी समय दो पुलिसकर्मियों – एक हेड कांस्टेबल और एक कांस्टेबल – ने पुलिस स्टेशन के भीतर उसके साथ यौन उत्पीड़न किया।

विचारणीय न्यायालय ने अपने निर्णय में पीड़िता को "चौंकाने वाली झूठी" कहा, जिसकी गवाही "झूठ और असंगतियों से भरी" थी। अदालत ने निष्कर्ष निकाला कि थाने में यौन संपर्क हुआ था, परन्तु बलात्कार सिद्ध नहीं हुआ, और पीड़िता "यौन संबंध की अभ्यस्त" थी।

बॉम्बे हाई कोर्ट ने 1976 में सत्र न्यायाधीश के निष्कर्षों को अपास्त कर दिया और कहा कि किशोरी के साथ बलपूर्वक यौन सम्बन्ध स्थापित किए गए, जो बलात्कार की श्रेणी में आता है। हाई कोर्ट ने कहा कि तथाकथित 'सहमति' दरअसल 'निष्क्रिय समर्पण' था – ऐसी पीड़िता का, जो अधिकार-युक्त व्यक्तियों के सामने स्वयं का प्रतिरोध करने में अक्षम थी।

बाद में, दोनों पुलिसकर्मियों की अपील पर, सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय का निर्णय निरस्त करते हुए याचिकाकर्ताओं से सहमति जताई कि "कथित यौन संबंध एक शांतिपूर्ण घटना" था, क्योंकि पीड़िता के शरीर पर चोट के कोई निशान नहीं थे। एक पत्र जिसने पूरे देश को झकझोर दिया

मथुरा बलात्कार मामला राष्ट्रीय चेतना में तब उभरा जब सितंबर 1979 में, अभियुक्तों की बरी होने के तुरंत बाद, चार बुद्धिजीवियों ने न्यायालय को एक पत्र लिखा। यह पत्र उपेंद्र बक्सी, वसुधा धगमवार, रघुनाथ केलकर और लोटिका सरकार द्वारा लिखा गया था। पत्र ने 'समर्पण' और 'सहमति' के बीच के स्पष्ट अंतर को रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि सहमति में समर्पण शामिल हो सकता है, परन्तु इसका उल्टा अनिवार्य नहीं है; और प्रतिरोध का अभाव सहमति का संकेत नहीं है।

पत्र में लिखा था कि निर्णय में एक शब्द भी इस तथ्य की निंदा में नहीं था कि एक किशोरी लड़की को अवैध रूप से थाने बुलाया और रोका गया। न ही इस बात की निंदा की गई कि पुलिस स्टेशन का उपयोग बलात्कार या यौन समर्पण के स्थल के रूप में किया गया।

पत्र ने यह भी लिखा कि अदालत ने पीड़िता की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, कानूनी अधिकारों की अज्ञानता, उसकी आयु, कानूनी सहायता तक उसकी पहुँच की कमी, और भारतीय थानों में गरीबों व शोषितों को सताने वाले भय-संकुल पर कोई विचार नहीं किया। अंत में पत्र ने चुनौती देते हुए कहा कि “क्या हम विनम्रतापूर्वक सुझाव दे सकते हैं कि आप और आपके माननीय सहयोगी गुप्त रूप से, गरीबी का चेहरा धारण करके, दिल्ली से सटे गाँवों के कुछ पुलिस स्टेशनों का दौरा करें?”

### **अनेक संशोधन**

वर्ष 1979 के निर्णय पर जन-आक्रोश के बाद संसद ने 1983 का दंड कानून संशोधन अधिनियम लाया, जिसमें हिरासत में बलात्कार को IPC की धारा 376 के तहत एक पृथक अपराध बनाया गया। इस संशोधन ने हिरासत-बलात्कार मामलों में प्रमाण का भार पीड़िता से हटाकर अभियुक्त पर डाल दिया, यदि यौन संपर्क सिद्ध हो जाए।

बाद में भंवरी देवी पर हुए सामूहिक बलात्कार के बाद दायर जनहित याचिका में, सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के विरुद्ध विशाखा दिशानिर्देश स्थापित किए।

दिसंबर 2012 में चलती बस में एक 22 वर्षीय फिजियोथेरेपी इंटरन के साथ हुए सामूहिक बलात्कार और हत्या ने राष्ट्र को एक बार फिर सड़कों पर ला दिया। 2013 दंड कानून संशोधन अधिनियम, जिसे न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा समिति की सिफारिशों पर आधारित माना जाता है, ने विभिन्न प्रावधान जोड़े – जैसे कि पुलिस द्वारा FIR दर्ज न करने पर दंड; अस्पतालों द्वारा यौन उत्पीड़न पीड़िताओं को मुफ्त चिकित्सा उपलब्ध न कराने पर दंड; और IPC की धारा 375 में बलात्कार की परिभाषा का विस्तार।

इन संशोधनों ने यह भी स्पष्ट किया कि महिला की चुप्पी या कमजोर 'ना' को 'हाँ' नहीं माना जा सकता। साथ ही सहमति की आयु 16 से बढ़ाकर 18 वर्ष की गई और मृत्यु या 'स्थायी वनस्पति अवस्था' (persistent vegetative state) की स्थिति में मृत्युदंड जैसे कठोर दंड जोड़े गए।

उन्नाव (2017) और कठुआ (2018) मामलों ने संसद को और अधिक कठोर संशोधन करने पर विवश किया। 2018 संशोधन अधिनियम ने 12 वर्ष से कम आयु की पीड़िताओं के मामलों में मृत्युदंड का प्रावधान किया और 16 वर्ष से कम आयु की पीड़िता के मामलों में न्यूनतम 20 वर्ष का दंड जोड़ा। जांच, ट्रायल और अपील की समय-सीमा भी निर्धारित की गई।

अंततः 2023 दंड कानून संशोधन अधिनियम द्वारा BNS लाया गया, जिसने महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध यौन अपराधों को लैंगिक रूप से तटस्थ बनाया – पीड़ित और अपराधी दोनों की दृष्टि से। BNS ने 18 वर्ष से कम आयु की महिला के साथ सामूहिक बलात्कार को मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय बनाया। साथ ही BNS ने 'प्रपंच के तहत यौन संबंध' जैसे नए अपराध जोड़े और यौन उत्पीड़न की परिभाषा का विस्तार किया।

स्रोत: द हिंदू समाचारपत्र, दिनांक 18.11.2025

# भारत की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल द्वारा कन्फेडरेशन ऑफ इंडियन बार द्वारा आयोजित न्यायिक सुधारों पर संगोष्ठी के उद्घाटन के अवसर पर दिया गया भाषण

नई दिल्ली : 23.02.2008

देवियों और सज्जनों, बार का पूर्व सदस्य रहने के नाते, महान विद्वता, सूझबूझ और अनुभव वाले व्यक्तियों के बीच उपस्थित होना मेरे लिए एक अनूठा सम्मान है। आप सभी को मेरा अभिवादन। बहुत गर्व के साथ, हम याद कर सकते हैं कि बार न केवल स्वतंत्रता संग्राम में अग्रणी था बल्कि बाद में हमारे संविधान की परिकल्पना में अमूल्य योगदान दिया।

उन कानूनी दिग्गजों में महात्मा गांधी, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, पं. नेहरू, सरदार पटेल, श्री जी.बी. पंत, श्री सी.आर. दास, श्री प्रकाशम, श्री के.एम. मुंशी और श्रीमती जी. दुर्गाबाई शामिल थे - केवल कुछ नाम गिनाने के लिए। और आज, मैं कन्फेडरेशन ऑफ इंडियन बार को इस रचनात्मक और समय पर पहल करके इस सम्मेलन को आयोजित करने के लिए राष्ट्र की सेवा की समृद्ध परंपरा को जारी रखने के लिए बधाई देती हूँ। मुझे विश्वास है कि प्रशिक्षित कानूनी दिमागों के विचारोत्तेजक विचार-विमर्श से उभरी आसूत बुद्धिमत्ता एक अधिक संवेदनशील और उत्तरदायी न्यायपालिका की ओर व्यापक न्यायिक सुधारों के लिए एक रचनात्मक मार्गदर्शिका तैयार करने में स्पष्ट दिशा प्रदान करेगी।

हमारा स्वतंत्रता संग्राम कानून के शासन, समानता के मूल्यों, गरिमा और न्याय के साथ संपूर्ण जीवन की विजय में समाप्त हुआ। संविधान सभा ने हमारे लोकतांत्रिक ढांचे की त्रिमूर्ति में से एक के रूप में एक स्वतंत्र न्यायपालिका का निर्माण किया था। यह वह पवित्र विश्वास था जो हमारे संविधान के संस्थापकों पिताओं ने हमारी न्यायिक व्यवस्था में रखा था। यह उतना ही महत्वपूर्ण है कि हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए इतनी सावधानी और मेहनत से जो व्यवस्था बनाई है, वह अपनी प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखते हुए, अपनी दक्षता को उच्चतम स्तर पर रखते हुए, राष्ट्र की सेवा में शक्ति से शक्ति की ओर बढ़ते हुए खुद को बनाए रखे। मुझे कहना होगा कि भारत में न्यायपालिका ने खुद को सराहनीय तरीके से निर्वहन किया है। हमारे न्यायशास्त्र में असाधारण योगदान देते हुए, हमारी न्यायपालिका अपनी बुद्धिमान और रचनात्मक व्याख्याओं के माध्यम से यह सुनिश्चित करने में सफल रही है कि कानून का माध्यम सत्य और सामाजिक भलाई को आगे बढ़ाने में बदलते समय की जरूरतों के अनुकूल हो।

जिस देखभाल, परिश्रम और सहानुभूति के साथ न्यायपालिका उस एकल व्यक्ति की भी रक्षा करती है जिसके पक्ष में सत्य है, वह न्यायपालिका को एक श्रेष्ठ उद्देश्य और उच्च नैतिक अधिकार प्रदान करती है। यह हमारी न्यायपालिका की यह प्रगतिशील और मानवतावादी भूमिका और न्यायिक क्षमता है जिसने अंतर्राष्ट्रीय प्रशंसा अर्जित की है। यह आदरणीय सभा मुझसे सहमत होगी कि 'महिमा' शब्द स्वतः ही न्याय की अवधारणा से जुड़ जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि न्यायिक बिरादरी पर न्याय की महिमा को उसकी सभी भव्यता में बनाए रखने की बहुत भारी जिम्मेदारी डाली गई है। न्यायालयों को न्याय के मंदिरों के रूप में सम्मानित किया जाता है और न्यायिक बिरादरी को कानून के संरक्षक और न्याय के वितरकों के रूप में माना जाता है। इस बहुमूल्य विश्वास को नष्ट होने नहीं दिया जा सकता।

हमारी स्वतंत्रता के छह दशकों से अधिक समय के बाद, समय आ गया है जब हमें गंभीरता से आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता है कि क्या हमारी न्यायिक मशीनरी सभी को पूर्ण न्याय सुरक्षित करके और सत्य, विश्वास और आशा के प्रकाश स्तंभ के रूप में खड़े होकर प्रबुद्ध मार्ग पर चलने की अपनी अपेक्षाओं पर खरी उतरी है। स्वीकार्य रूप से, न्यायिक प्रशासन का क्षेत्र अपनी कमियों और दोषों से रहित नहीं है। लेकिन हमें निराश होने की जरूरत नहीं है। हम न्यायिक सुधारों की प्रक्रिया के माध्यम से इन चुनौतियों को दूर कर सकते हैं और सस्ती कीमतों पर त्वरित और शीघ्र, उच्च गुणवत्ता और शुद्ध न्याय की डिलीवरी सुनिश्चित कर सकते हैं। सबसे पहले जिस समस्या से निपटना है वह है मुकदमेबाजी की मात्रा में भारी वृद्धि। अदालतों में भीड़भाड़ एक कठिन चुनौती बन गई है। मामलों का निपटान अत्यधिक समय लेने वाला है। इस पीड़ादायक देरी ने आम आदमी के न्याय के दरवाजे पर दस्तक को एक निराशाजनक अनुभव बना दिया है। इसके अशुभ संकेत हैं। हम ऐसी स्थिति की अनुमति नहीं दे सकते जहां आम आदमी कानून को अपने हाथों में लेने के

लिए प्रलोभित हो और भीड़ द्वारा हिंसा की विचलित संस्कृति की सदस्यता ले।

औपचारिक न्यायनिर्णयन मशीनरी को सर्वोच्च शासन करना होगा। हम देरी के बारे में लगातार बात करते हैं लेकिन अब समय आ गया है कि बकाया की विपत्ति के खिलाफ एक धर्मयुद्ध शुरू किया जाए। न्याय के प्रशासन में समान भागीदारों के रूप में बार और बेंच दोनों को इस समस्या का समाधान करना चाहिए। देरी को कई कारणों से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है - प्रक्रियाओं की जटिलताएं, मामलों को लंबा खींचना और अपीलों की अंतहीन प्रक्रिया। जनसंख्या के अनुपात में न्यायाधीशों की संख्या एक और कारण है। हमारे पास प्रति दस लाख जनसंख्या पर केवल 10.5 न्यायाधीश हैं जिससे न्यायाधीशों पर अधिक बोझ पड़ता है। यद्यपि न्यायाधिकरण स्थापित किए गए हैं, उन्होंने अपने स्वयं के बकाया उत्पन्न किए हैं। हमें ऐसी न्यायिक मशीनरी की आवश्यकता है जो आसानी से सुलभ हो और लोगों को सस्ती और भ्रष्टाचार रहित न्याय प्रदान करे। इस प्रयास की ओर, हमारी कुछ कानूनी प्रक्रियाओं को सरल, सुव्यवस्थित, तर्कसंगत, आसानी से समझने योग्य और सामान्य ज्ञान के अनुकूल बनाने का एक मजबूत मामला है। हालांकि, प्रक्रियाओं में संशोधन सावधानीपूर्वक किए जाने चाहिए ताकि त्वरित न्याय सुनिश्चित किया जा सके जबकि यह सुरक्षा करते हुए कि निष्पक्ष खेल, समता और सद्भावना का शिकार न हो।

त्वरित लेकिन दोषपूर्ण न्याय बिल्कुल भी न्याय नहीं है। एक सतर्क, सक्रिय और मानवीय बार के बिना कोई भी न्यायिक सुधार पूर्ण नहीं होगा। हमारा देश कानूनी प्रतिभा के एक विशाल भंडार का दावा कर सकता है, जो दुनिया में वकीलों का दूसरा सबसे बड़ा समुदाय है। वकील हम सभी के लिए न्याय के न्यासी हैं और उन्हें ईमानदारी और सदाचार के उच्च मानक स्थापित करने चाहिए। गुणवत्तापूर्ण कानूनी सलाह की निषेधात्मक लागत के कारण नागरिकों की कानून तक पहुंच सीमित रहती है। यह आम बात है कि कानून अमीरों को विलास बन गया है। कानूनी सहायता गरीबों को न्याय सुरक्षित करने में मदद करने में काफी मदद कर सकती है। वर्तमान कानूनी सहायता समर्थन प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है और कानूनी सहायता वकीलों को बेहतर और त्वरित पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। न्यायिक प्रक्रियाओं को आधुनिक बनाकर उन्हें गतिशील बनाने की आवश्यकता भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। ऐसी न्यायिक प्रक्रियाओं को समाप्त करने की आवश्यकता है जो बेकार हो गई हैं और अपनी उपयोगिता खो चुकी हैं। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की क्षमता का अधिकतम उपयोग किया जाना चाहिए। अदालतों की उत्पादकता और दक्षता में सुधार के लिए अदालती रिकॉर्ड को डिजिटाइज़ किया जा सकता है।

मेरा मानना है कि सर्वोच्च न्यायालय की रजिस्ट्री के कम्प्यूटरीकरण से बकाया को कम करने और वैज्ञानिक डॉकेट प्रबंधन को सुविधाजनक बनाने में लाभकारी प्रभाव पड़ा है। ई-फाइलिंग और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग भौतिक उपस्थिति को समाप्त करके कीमती समय और संसाधनों की बचत करती है और न्याय को अधिक आसानी से सुलभ और कम खर्चीला विकल्प बनाती है। सही प्रयासों के साथ, कागज रहित अदालतें एक विशिष्ट संभावना बन सकती हैं, जो बदले में अधिक पारदर्शिता, व्यापक पहुंच, शीघ्र निपटान, भ्रष्टाचार को कम करने और न्याय की बेहतर गुणवत्ता सुनिश्चित कर सकती हैं।

मुझे समझ में आया है कि सरकार ने भारत में सभी जिला और अधीनस्थ अदालतों को कम्प्यूटरीकृत करने और दो वर्षों में लागू किए जाने वाले सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के आईसीटी बुनियादी ढांचे को उन्नत करने के लिए 442 करोड़ रुपये की योजना को मंजूरी दी है। वैकल्पिक विवाद समाधान (एडीआर) को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। हालांकि यह औपचारिक अदालतों को प्रतिस्थापित करने की आकांक्षा नहीं कर सकता, यह एक महत्वपूर्ण पूरक और पूरक भूमिका निभा सकता है। विरोधी प्रणाली के तहत पूर्ण परीक्षण के लंबे नियमों पर पूरी तरह से निर्भर रहने के बजाय, एडीआर तंत्र के माध्यम से विवादों के सौहार्दपूर्ण और सहमति से समाधान को बढ़ावा देना विवाद समाधान का एक तीव्र और लागत प्रभावी तरीका हो सकता है। हाल ही में मुझे कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित बैंगलोर मध्यस्थता केंद्र के साथ बातचीत करने का अवसर मिला।

यह जानना उत्साहजनक था कि पिछले एक वर्ष में, 86 मध्यस्थों ने 1,000 से अधिक मामलों को सुलझाया था जिसमें प्रति मामले में खर्च किया गया औसत समय 131 मिनट था और सत्रों की औसत संख्या 1.81 थी। यह अन्य स्थानों में अनुकरणीय है। इस कार्य के लिए प्रशिक्षित जनशक्ति विकसित करने और एडीआर की उपयोगिता के बारे में जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता महसूस की जाती है। हमें इस बात पर गंभीरता से सोचने की जरूरत है कि मुकदमेबाजी में शीघ्र अंतिमता कैसे लाई जाए ताकि परीक्षण अदालतों के स्तर पर त्वरित, पूर्ण और लगभग अंतिम राहत प्रदान की जा सके। सरकार ने पहले से ही न्यायिक सुधारों के मार्ग पर कई पहल की हैं। 1562 फास्ट ट्रैक कोर्ट स्थापित किए गए हैं जिन्होंने उन्हें स्थानांतरित किए गए 18 लाख से अधिक मामलों का निपटारा किया है। देश के विभिन्न हिस्सों में स्थापित 190 पारिवारिक अदालतों ने सुलह के माध्यम से वैवाहिक विवादों को शीघ्रता से निपटारा है। मध्यवर्ती पंचायत स्तर पर अधिक परीक्षण अदालतें स्थापित करने के लिए ग्राम न्यायालय विधेयक पेश किया गया है।

स्वागत योग्य विशेषता यह है कि प्रक्रियाओं को सरल और लचीला रखा गया है ताकि मामलों को 90 दिनों के भीतर सुना और निपटारा जा सके। यह भी परिकल्पना की गई है कि लोगों के दरवाजे पर न्याय प्रदान करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ये अदालतें मोबाइल होंगी। न्यायपालिका के प्रशिक्षण और अभिविन्यास पर विशेष रूप से जैवआनुवंशिकी, आईपीआर और साइबर कानून जैसे ज्ञान के अग्रणी क्षेत्रों में ध्यान देने की आवश्यकता है। समय आ गया है जब हमें हितधारकों के रूप में, आलोचना के प्रति अनुचित रूप से संवेदनशील और संवेदनशील हुए बिना, सामूहिक रूप से न्यायिक

प्रशासन की बुराइयों के कारणों का आत्मनिरीक्षण करना होगा और समाधान खोजने होंगे। तभी हमारी आने वाली पीढ़ी हमें याद रखेगी कि हमने अपने राष्ट्र और नागरिकों के प्रति अपना कर्तव्य अपनी सर्वोत्तम क्षमता, ईमानदारी और उद्देश्यपूर्ण ढंग से निभाया। मुझे आशा है कि अगले दो दिनों में इस संगोष्ठी में विचार-विमर्श से फलदायी सुझाव सामने आएंगे।

धन्यवाद।  
जय हिन्द !



# विधिशास्त्र के स्कूल: इतिहास में उनके स्थान और उनकी वर्तमान व्यवस्था

लेखक: नाथन आइज़ेक्स

## "स्कूलों" के झगड़े

विधिशास्त्र के विभिन्न स्कूल - दार्शनिक, विश्लेषणात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक, समाजशास्त्रीय - एक सामान्य लक्ष्य तक पहुंचने के विभिन्न मार्गों का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं, बल्कि विभिन्न लक्ष्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह केवल तीन अंधे व्यक्तियों का मामला नहीं है जो एक हाथी के अपने विवरणों में असहमत हैं जिसके पास उन्हें ले जाया गया है, बल्कि इस बारे में एक मौलिक एवं वास्तविक मतभेद है कि कौन सा जानवर हाथी है। स्कूलों के बीच पहला सबसे स्थायी अंतर इस बात से संबंधित है कि विधि क्या है। फिर, स्वाभाविक रूप से, वे इस बारे में भिन्न हैं कि विधिशास्त्र क्या है। क्या यह एक विज्ञान, एक दर्शन, एक सामान्य दृष्टिकोण, एक प्रणाली, एक सिद्धांत, या एक विधि है? स्कूलों के वर्तमान नाम हमेशा उनके बीच के मुद्दों को स्पष्ट नहीं करते हैं। इतिहास या दर्शन के अध्ययन में ऐसा कुछ नहीं है जो विश्लेषण या विधि द्वारा सेवा किए जाने वाले या सेवा करने योग्य सामाजिक उद्देश्यों या अन्य उद्देश्यों पर विचार को बाहर करता है। एक पुस्तक के आवरणों के बीच कानूनी इतिहास के एक स्केच को विधि के विश्लेषण के साथ जोड़कर एक लेखक, वास्तव में, महसूस करता है कि उसने ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक स्कूलों के सभी अंतरों का "समाधान" कर दिया प्रोफेसर हॉलैंड की चेतावनी के बावजूद और अन्य या तो ऐतिहासिक विधिशास्त्र को कानूनी इतिहास के साथ भ्रमित करते हैं या जानबूझकर "विधि" के बजाय "दिखावटी और प्रभावशाली बहु-अक्षरीय शब्द" का उपयोग करते हैं। सर फ्रेडरिक पोलॉक, विधिशास्त्र पर एंग्लो-अमेरिकन लेखकों के डीन, जिनका हम कई अवसरों पर उल्लेख करेंगे, ने बहुत पहले "विधिशास्त्र के तरीकों" पर चर्चा की थी - मौजूदा विधि का व्यावहारिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक, और विश्लेषणात्मक अध्ययन और विधि के व्यावहारिक और सट्टा उपचार जैसा कि यह होना चाहिए - इस तथ्य पर खेद व्यक्त करते हुए कि इन विधियों को आम तौर पर परस्पर सहायक के बजाय एक-दूसरे के लिए सकारात्मक रूप से शत्रुतापूर्ण माना जाता था।

एक अमेरिकी शिक्षक ने विधिशास्त्र के एक कॉलेज का प्रस्ताव दिया है जो अन्य बातों के साथ पढ़ाएगा:

1. ऐतिहासिक, या आनुवंशिक, विधिशास्त्र।
2. तुलनात्मक, या चयनात्मक, विधिशास्त्र।
3. औपचारिक, या विश्लेषणात्मक, विधिशास्त्र।
4. आलोचनात्मक, या उद्देश्यपूर्ण, विधिशास्त्र।
5. विधायी, या रचनात्मक, विधिशास्त्र।
6. गतिशील, या कार्यात्मक, विधिशास्त्र।

एक रेस्तरां में एक आदमी ने एक बार चेरी पाई, मिन्स पाई, पीच पाई, और लेमन पाई ऑर्डर की। वेटर ने शांति से पूछा, "सेब की पाई में क्या गलत है?" दार्शनिक विधिशास्त्र, समाजशास्त्रीय विधिशास्त्र, नृवंशविज्ञान विधिशास्त्र, और इतने पर क्या गलत है? लेकिन, गंभीरता से, यदि इन भयानक अभिव्यक्तियों से केवल यह इरादा है कि कानूनों का इतिहास, कानूनी प्रावधानों या प्रणालियों की तुलना, विधि का विश्लेषण, और इसी तरह, यह संभव है, हालांकि किसी भी तरह से संभावित नहीं है, कि एक न्यायविद्, एक स्कूल, या एक युग को इनमें से प्रत्येक कोण से बार-बार विधि से संपर्क करना संतोषजनक या लाभदायक लगेगा - बशर्ते हमेशा कि कोई व्यक्ति शुरुआत में "स्कूलों" में से एक के सामने पूरी तरह से आत्मसमर्पण किए बिना यह संतुष्ट कर सके कि विधि क्या है। यदि कोई इस प्रयोग को आजमाने के लिए इच्छुक है, तो कहीं ऐसा न हो कि वह विधिशास्त्र की इन सभी किस्मों को उन स्कूलों की शिक्षाओं को व्यक्त करने के लिए ले ले जो उनके नाम रखते हैं, में उनके ध्यान में एक अंश की सिफारिश करता हूँ जिसे झेरिंग आधे मजाक में और आधे गंभीरता से उद्धृत करने का दिखावा करता है। वह तीन प्रकार के दिमागों की बात करता है: वे जो किसी मामले के केवल एक पक्ष को देख सकते हैं; वे जो सभी पक्षों को देख सकते हैं, लेकिन एक समय में केवल एक और इसलिए असंगतताओं से परेशान नहीं हैं; और अंत में, वे जो एक साथ कई पक्षों को देख सकते हैं, असंगतताओं का पता लगा सकते हैं, और एक संदेह से परेशान हो सकते हैं। मुझे सभी विधिशास्त्रों के कॉलेज में इन दिमागों में से किसी पर भी दया आनी चाहिए, लेकिन अंतिम वर्ग विशेष रूप से शहादत का सामना करेगा। क्योंकि "स्कूल" एक-दूसरे के साथ असंगत हैं, कभी-कभी सचेत रूप से, कभी-कभी अचेतन रूप से। वे विभिन्न समय और स्थानों के उत्पाद हैं, और न केवल अपने दृष्टिकोण, विधियों और प्रवृत्तियों में भिन्न हैं, बल्कि अपनी मौलिक अवधारणाओं, अपनी समस्याओं और उद्देश्यों में - एक शब्द में, अपने अध्ययन के विषय वस्तु में भिन्न हैं।

## - विधि में परिवर्तनों द्वारा विधिशास्त्र में परिवर्तन

वास्तव में, विधि के सिद्धांत परिवर्तन से कैसे बच सकते हैं, जब तक विधि स्वयं बदल रहा है? किसी दिए गए समय और स्थान के विधि के लिए उपयुक्त विधिशास्त्र का विचार, निश्चित रूप से, नया नहीं है। ऑस्टिन के सबसे कठोर आलोचक स्वीकार करते हैं कि विधि की उनकी अवधारणा अपने समय के अंग्रेजी विधि के संबंध में निर्विवाद है। उनके हमले इस तथ्य पर आधारित हैं कि यह सभी समय और स्थानों के विधि को आराम से फिट नहीं करेगा। प्रोफेसर पाउंड आगे जाते हैं और कई संबंधों में सुझाव देते हैं कि विधिशास्त्र के कुछ स्कूल एक प्रकार या दूसरे के कानूनी अवधियों में अपनी उपस्थिति बनाने की संभावना रखते हैं। सर फ्रेडरिक पोलॉक ने पहले से उद्धृत एक निबंध में पूछा कि विधिशास्त्र की विधियों में से एक या दूसरी को विभिन्न समय और राष्ट्रों में क्यों प्रभुत्व मिला है। उनका उत्तर, विरोधाभासी रूप से पर्याप्त, यहां के रूप में कहीं और महान अंतर्निहित समानताओं के लिए सतह के नीचे देखने की उनकी प्रवृत्ति द्वारा हमारे वर्तमान उद्देश्य के लिए अपेक्षा से कम उपयोगी है। ऐतिहासिक परिस्थितियों, केवल दुर्घटनाओं पर चर्चा करने के बाद, जो स्कूलों को अलग करती प्रतीत होती हैं, वह निष्कर्ष निकालते हैं: "कोई कारण नहीं है कि इंग्लैंड, जर्मनी, या अमेरिका में हमें खुद को ऐसी परिस्थितियों का गुलाम बनाना चाहिए, या क्यों एक विधि को दूसरों के बहिष्कार के लिए खेती की जानी चाहिए। एक पसंदीदा विधि का झूठा गर्व और विशिष्टता हमेशा अपनी सजा लाएगी।" एक शिक्षक के साथ मुद्दा लेना दर्दनाक है जिसके प्रति कोई इतना अधिक ऋणी है, लेकिन मैं उस निष्कर्ष का विरोध नहीं कर सकता जिसे मैंने कहीं और दूसरे संबंध में व्यक्त किया कि प्रत्येक युग अपने स्वयं के सिद्धांतों और विधि के वर्गीकरणों का हकदार है, और यह आवश्यकता का विरोध नहीं कर सकता है, भले ही यह पुराने शब्दों को नए अर्थ व्यक्त करने के लिए रखकर अतीत को केवल औपचारिक सम्मान देता हो। किसी भी दर से, चाहे दोष या बचाव के योग्य हो, सामान्य प्रवृत्ति वही करने की रही है जो सर फ्रेडरिक पोलॉक निंदा करते हैं, एक समय में एक विधि को दूसरों के बहिष्कार के लिए विकसित करना। यहां तक कि वे लेखक जो अपने ग्रंथों को पहले के स्कूलों के काम की चर्चाओं के साथ पेश करते हैं, लगभग हमेशा इस सिद्धांत पर आगे बढ़ते हैं कि प्रत्येक स्कूल सत्य के एक हिस्से के कब्जे में रहा है जिसके पूरे को हाथ में ग्रंथ में प्रस्तुत किया जाना है। हालांकि, पिछले कुछ वर्षों में, दुनिया के कानूनी दर्शन को हमारे सामने, एक-दूसरे के साथ रखने में बड़ी प्रगति हुई है। यह कार्य स्कूलों को मार्शल करने के लिए, या कम से कम उनकी उपस्थिति में पहचानने के लिए एक मजबूत प्रलोभन प्रदान करता है, समय-समय पर उनके गायब होने, और उनके पुनर्प्रकट होने में, कानूनी विकास के सामान्य चरणों का प्रतिबिंब। समुदायों के विकास के एक सामान्य पाठ्यक्रम की भविष्यवाणी करने में, और यह सुझाव देते हुए कि इस पाठ्यक्रम में चरण समय-समय पर फिर से प्रकट होते हैं, मैं इतिहास के एक भाग्यवादी दर्शन के लिए बहस नहीं कर रहा हूँ जैसा कि वीको ने प्रकट किया: उनके चक्र उपलब्धियों के एक अनुक्रम से निपटते हैं जो वास्तविकता में दुर्घटनाओं के अधीन हैं; मैं केवल विचार प्रवृत्तियों की बात कर रहा हूँ। फिर भी एक पूर्व नियत क्रम में विचारों की सहज पीढ़ी के सिद्धांत को अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं है जैसे कि मैकलेनन, मॉर्गन, पोस्ट, और फ्रेडरिक्स ने सभी जलवायु के असहाय जंगलियों पर थोपा। विचार प्रवृत्तियां जो मेरा मानना है कि उन सभी लोगों के कानूनी इतिहास में जिनके साथ हम परिचित हैं, पहचानने योग्य हैं, एक अनुक्रम बनाती हैं जो टाई स्वयं स्वीकार करेंगे, क्योंकि वह जिसे तर्क कहते हैं उसके काम के कारण प्रवृत्तियां। वास्तव में, विधिशास्त्र के स्कूलों को मार्शल करने के वर्तमान प्रयास में, हम जहां तक संभव हो विधि की बदलती सामग्री पर विचार से बचेंगे, और अपना ध्यान इसके बाहरी रूप में लगातार परिवर्तनों और परिणामी तरीके से इसे संपर्क करने और संभालने पर सीमित करेंगे।

## - विधि कैसे बदलता है - चक्र सिद्धांत

कानूनी विकास के एक सामान्य पाठ्यक्रम की धारणा ने कई प्रकार के दिमागों पर एक आसानी से समझाए गए आकर्षण का प्रयोग किया है। वीको, हेगेल, मेन, फस्टेल डी कौलांगेस, और पाउंड के सामान्यीकरण, प्रत्येक देश में केवल एक नाम का उल्लेख करने के लिए, कितने भिन्न हैं, वे सभी सहमत हैं कि विधि स्वयं विकास के एक विधि के अधीन है। मैंने कहीं और इन सभी द्वारा सुझाई गई रूपरेखाओं में एक लोगों के विधि की प्रगति में क्रमिक कदमों का पता लगाने का प्रयास किया है, लेकिन विशेष रूप से सर हेनरी मेन द्वारा। एक प्रयास को शुरू करते हुए, मैंने अपनी उल्लेखनीय टिप्पणी के पीछे के कारण की व्याख्या करने के लिए कि कानूनी कल्पनाएं, इक्विटी, और विधान सार्वभौमिक रूप से नामित क्रम में एक-दूसरे का पालन करते हैं, मुझे इस विचार पर ले जाया गया कि इनमें से प्रत्येक साधन, जिसके द्वारा विधि को समाज के साथ सद्भाव में रखा जाता है, एक विशेष दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ है जो किसी दिए गए समय में विधि की स्थिति से उत्पन्न होता है।

विधि की क्रमिक अवस्थाओं को स्पष्ट करने के लिए केवल किसी भी ऐसे लोगों के इतिहास को देखना आवश्यक है जिन्होंने एक बार संहिताकरण हासिल किया है। इसके वकीलों का पहला कार्य शब्द-अध्ययन या टिप्पणीकरण है। नए मामले, कठिन मामले, केवल गहन शब्द-अध्ययन द्वारा पूरे किए जा सकते हैं, शायद 'शब्द-खिंचाव या कानूनी कल्पनाओं' द्वारा। पत्र बना रहता है हालांकि भावना इसे पार कर गई है। रोमन-महाद्वीपीय विधि के इतिहास में न केवल बारह तालिकाएं, बल्कि जस्टिनियन की संहिता और विभिन्न महाद्वीपीय देशों में इसके आधुनिक उत्तराधिकारी, "लास सिएत पार्टिडास," "कोड नेपोलियन," और "बर्गरलिचेस गेसेट्सबुच," प्रत्येक ने अपने कोड-बाउंड टिप्पणीकारों का उत्पादन किया। अन्य उदाहरण अन्य कानूनी प्रणालियों के इतिहास में प्रचुर मात्रा में हैं। एंग्लो-अमेरिकन विधि में रिट्स के रजिस्टर का बंद होना, तेरहवीं शताब्दी के अंत में वर्ष पुस्तकों के दिनों से ठीक पहले, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए संहिताकरण के अनुरूप है।

जब अंततः विधि के टाइटल्स और जॉट्स के इस कृत्रिम अति-जोर के खिलाफ एक प्रतिक्रिया सेट होती है, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह कैसे लाया जाता है, शुद्ध परिणाम शब्द-अध्ययन की तुलना में सिद्धांत-अध्ययन का जोर है। टिप्पणीकार स्कूलों में टिप्पणीकारों को प्रतिस्थापित करते हैं, और

अदालतों में सामान्य सिद्धांतों के मजिस्ट्रियल प्रशासन में मुक्ति की मांग की जाती है - अर्थात्, इक्विटी। प्रशासित सामान्य सिद्धांत "भगवान के शब्द" या "विवेक" या "प्रकृति के विधि" के लिए बहुत अस्पष्ट अपील हो सकते हैं, या वे समान मामलों में विधि के ज्ञात नियमों के विस्तार से प्राप्त अधिक निश्चित सिद्धांत हो सकते हैं। उदाहरणों के लिए हम पहले से उल्लेखित टिप्पणीकरण अवधियों के बाद की कई अवधियों की ओर मुड़ सकते हैं: उदाहरण के लिए, प्रेटर्स के रोम में और महाद्वीपीय यूरोप में सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में प्राकृतिक विधि की अवधि, और एंग्लो-अमेरिकन विधि की इक्विटी अवधि, विशेष रूप से सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत।

अंत में, किसी दिए गए समय के सिद्धांत समाप्त हो जाते हैं। अदालत के उन्हें नए आकारों में मोड़ने और मोड़ने के प्रयासों के बावजूद, उनकी कठोरता धीरे-धीरे स्पष्ट हो जाती है। समय की जरूरतें अंततः पुरुषों को अपने प्राप्त विधि के सचेत संशोधन में मजबूर करती हैं, और मेन का तीसरा साधन, विधान, प्रकट होता है। पहली बार में डर से छोटा, यह हर कदम के साथ ताकत और साहस लेता है, जब तक कि यह उसी प्रकार प्रभुत्व स्थापित करता है जैसा उसने शाही रोम में, अठारहवीं शताब्दी के अंत में फ्रांस में, उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी में, और इंग्लैंड और अमेरिका में, अभी भी किया था। यहाँ मेन कहानी समाप्त करेंगे, लेकिन इतिहास सही चलता रहता है। विधान अंततः एक नए संहिताकरण में निगल जाता है, और चक्र दूसरे मोड़ के लिए तैयार है। तब हमारे पास विधि की एक विकसित प्रणाली में है, अर्थात्, एक जिसमें संहिताकरण ने एक बार अपनी उपस्थिति बनाई है:

**संहिताकरण**  
**ग्लोसाटोर परंपरा (शब्द-अध्ययन एवं विधिक कल्पनाएं)**  
**टिप्पणी (सिद्धांत-अध्ययन और इक्विटी)**  
**विधान (सचेत संशोधन)**

### संहिताकरण

- विधिशास्त्र के चक्र  
 इनमें से प्रत्येक चरण के साथ, प्रत्येक चक्र के भीतर, हम न केवल क्रिस्टलीकरण की एक निश्चित डिग्री और विधि के सुधार के लिए एक अलग साधन को जोड़ सकते हैं, बल्कि विधिशास्त्र के विषय वस्तु की एक अलग उपस्थिति, और समय की जरूरतों के लिए उपयुक्त अध्ययन की एक अलग विधि भी। अब यदि हम न्यायविदों को उनकी दो सामान्य वर्गों में विभाजित करते हैं, जैसा कि यह है, या विधि जैसा कि यह होना चाहिए, उन्हें कॉल करते हुए, जैसा कि बेंथम करते हैं, "व्याख्यात्मक" और "सैंसोरियल," हम एक आरेख का निर्माण कर सकते हैं जो स्कूलों को उस क्रम में मार्शल करता प्रतीत होता है जिसमें उन्होंने वास्तव में समय-समय पर अपनी उपस्थिति और पुनर्प्रकट होना बनाया है। निश्चित रूप से, किसी को अवधियों को तेजी से विभाजित होने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। न केवल ओवरलैपिंग और कभी-कभी दूसरी अवधि, या दूसरे देश के विधिशास्त्र की सचेत नकल होगी, बल्कि, सामान्य तौर पर, विधिशास्त्र जो तार्किक रूप से विधि की दी गई स्थिति से संबंधित है, बल्कि इसके शिखर का पालन करने और इसके पतन के बाद पीछे रहने के लिए देखा जाएगा, बजाय इसके साथ दिखाई देने के। यह स्वाभाविक है जब हम विचार करते हैं कि विधिशास्त्र आम तौर पर विधि के अवलोकन से सीखा जाता है, और पूर्ण तथ्य पर आधारित है, बजाय इसके उल्टा। कानूनी विकास के प्रत्येक विशिष्ट चरण के लिए इसके दो वर्गों के न्यायविदों की अनुमति देते हुए, हमारे पास छह समूह हैं जिनमें कई स्कूलों को मोटे तौर पर, लेकिन मुझे आशा है कि बहुत अधिक हिंसा के बिना, डाला जा सकता है।

### विधि और विधिशास्त्र के चरणों की तालिका

अवधि का प्रकार	व्याख्यात्मक विधिशास्त्र	सैंसोरियल विधिशास्त्र
टिप्पणीकरण	टीकात्मक (पाठ का अध्ययन)	तुलनात्मक-क्षमाप्रार्थी (विदेशी प्रणालियों के संदर्भ में आलोचना)
टिप्पणी	विश्लेषणात्मक (सिद्धांतों का अध्ययन)	दार्शनिक (प्रकृति के विधि को विधि के रूप में मान्यता)
विधान और संहिताकरण	ऐतिहासिक (परिवर्तन के बारे में सचेत)	रचनात्मक (परिवर्तन की शक्ति का उपयोग)

फॉर्मले में कोई जादू नहीं है। इसके विपरीत, इसे केवल सच्चाइयों तक कम किया जा सकता है, क्योंकि यह देखना मुश्किल है कि किसी भी दिए गए चरण में विधि पर वैज्ञानिकों और सुधारकों को ढीला करने से कोई भिन्न परिणाम कैसे उम्मीद किए जा सकते हैं।

- (क) रचनात्मक स्कूल

इतिहास को पीछे की ओर पढ़ने में विश्वास करते हुए, मुझे पहले एक विधि सुधारक को लेने दें और उसे ऐसे समय में बैठाएं जैसा कि हम एंग्लो-अमेरिकन विधि में गुजर रहे हैं - जब विधि सुधार आसानी से हासिल विधान के माध्यम से है, जब यह सभी पुरुषों का एक सामान्य सिद्धांत है कि हम खुद को सूट करने के लिए विधि बना और खत्म कर सकते हैं। वह एक रचनात्मक न्यायविद् बनने के लिए बाध्य है। वह हो सकता है, और शायद होगा, विशेष विचारों के बारे में अधिक चिंतित जो वह अपने विधान में मूर्त रूप देना चाहता है, बनाय इसके कि वह किस साधन पर निर्भर करता है। वह खुद को एक समाजशास्त्रीय न्यायविद् कह सकता है या अपने बैनर पर "मनुष्य के अधिकार" कढ़ाई कर सकता है, वह "सबसे बड़ी संख्या का सबसे बड़ा अच्छा" अपनी युद्ध-पुकार, या "कुल्चुर" अपना श्लागवोर्ट बना सकता है, लेकिन विधि की उसकी अवधारणा विधान के सिद्धांत से पूर्णतः ओतप्रोत होगी। इस प्रकार वह शायद ही इस धारणा से डरेगा कि विधि पैदा होते हैं न कि बनाए जाते हैं, एक ओर, और न ही वह इस सिद्धांत में चूक जाएगा कि कुछ नियम विधि हैं चाहे पुरुष उन्हें घोषित करें या नहीं। वह न तो एक ऐतिहासिक और न ही एक दार्शनिक न्यायविद् होगा - इतिहासकार और दार्शनिक हालांकि वह हो सकता है। वह विधि के शब्दों को अधिकारियों के रूप में नहीं देखेगा, न ही अपने सिद्धांतों को अंतिम मानेगा। उनकी व्याख्या सख्त या मुक्त है - जो भी उनके रचनात्मक काम में क्षण के लिए सबसे बड़ी सहायता प्रदान करने के लिए होता है। वह, वास्तव में, व्याख्या के अपने सिद्धांत हो सकते हैं, फिर भी कानूनी ज्ञान की ऊंचाई उसके लिए निश्चित रूप से व्याख्याशास्त्र में नहीं होगी; वास्तव में, वह यांत्रिक (सूत्रात्मक) विधिशास्त्र से अपनी स्वतंत्रता पर गर्व करने की संभावना है। और जहां तक विश्लेषण का संबंध है, जबकि विधि प्रवाह की स्थिति में है, विश्लेषण करने के लिए क्या है? वह जानता है कि विधानमंडल एक ही सत्र में सबसे अच्छी योजना को अप्रचलित कर सकता है। फिर भी, चाहे उनके दिन की समस्याएं सामने आएँ, चाहे वे विधि की उसकी परिभाषा को कैसे रंग सकें, वह शायद ही सकारात्मक विधि के रूप में इसे परिभाषित करने की आवश्यकता से बच सकता है। इस प्रकार का विधिशास्त्र हम संहिताकरण की पूर्व संध्या पर कानूनी प्रणालियों में से प्रत्येक में पता लगा सकते हैं। जस्टिनियन के कॉर्पस जूरिस, हालांकि असहमत लेखकों को अंधाधुंध उद्धृत करते हुए, अल्पियन के प्रकार के पुरुषों से अपना विधिशास्त्र लेता प्रतीत होता है। शास्त्रीय अवधि के रोमन वकील की उनकी तस्वीर एक ऐसे आदमी की है जो "रोम के कानूनों में सलाह देने में कुशल और सक्षम है; एक ओर प्लेटो के गणराज्य के विधि नहीं, न ही दूसरी ओर रोडस या एफिसस के विशेष अध्यादेश।" हमारे दिन की भाषा में वह न तो एक दार्शनिक और न ही एक तुलनात्मक न्यायविद् है, बल्कि सकारात्मक विधि का एक व्याख्याकार है। संस्थानों के शुरुआती वाक्य (ग्लैनविल, ब्रैटन, "फ्लेटा," "रेगियम मैजेस्टेटम" और फोर्टेस्क्यू में नकल किए गए) कानूनों को, हथियारों की तरह, सरकार के काम में संप्रभु के उपकरण बनाते हैं। विधि संप्रभु द्वारा लगाए जाते हैं। आधुनिक समय में हम सबसे पहले फ्रांसीसी के बीच, फिर जर्मनों के बीच, और अंत में एंग्लो-अमेरिकन न्यायविदों के बीच रचनात्मक या विधायी सिद्धांत पाते हैं। फ्रांस में फ्रांसीसी क्रांति द्वारा मार्ग तैयार किया गया था, जिनके गर्म सिर और दार्शनिकों ने अपनी रचनात्मक शक्ति को इतनी उत्सुकता से महसूस किया कि उन्होंने समय की एक नई गणना, सरकार की एक नई प्रणाली, कानूनों का एक नया सेट - सकारात्मक विधि बनाने के बारे में निर्धारित किया। रूसो की वॉलॉटे जेनरेल की भावना लहर के शीर्ष पर सवार हुई। यह नेपोलियन के हथियार नहीं थे, बल्कि उनका कोड था, जिसने विधि के प्रति इस दृष्टिकोण को आराम पर सेट किया। जर्मनी में, संहिताकरण में देरी हुई थी, लेकिन जब "बर्गरलिचेस गेजेटसबुच" कूसिबल (1874-96) से गुजर रहा था, तो समय की भावना भी विधि बनाने के लिए मनुष्य की शक्ति की मान्यता थी। झेरिंग (1818-92) के अनुसार, विधि केवल अचेतन बलों का परिणाम नहीं था, बल्कि व्यक्तियों के प्रयासों का परिणाम था। "डाई थेरे जूरिसप्रुडेज," वे कहते हैं, "इस्ट निच्ट लॉस बिल्डनेटिन डेस स्टॉफस सोंडर्न ऑच शाॅपफेरिन।" उनके लिए विधि बनाने की प्रक्रिया तेजी से सचेत प्रक्रिया लग रही थी। कि विधान की लहर कभी भी कम होगी और अचेतन प्रक्रियाएं फिर से महत्वपूर्ण हो जाएंगी, उन्हें नहीं हुआ, किसी भी अधिक से अधिक यह हमारे बीच में उन लोगों के लिए करता है जो खुश हैं कि विधि अंत में कुम्हार के हाथों में मिट्टी की तरह है।

एंग्लो-अमेरिकन प्रणाली में रचनात्मक अवधि न केवल अंत में अपने सिद्धांतकारों के पास है, बल्कि शुरुआत में एक भविष्यवक्ता है। जेरेमी बेंथम (1748-1832) अब कई स्कूलों द्वारा दावा किया जाता है - लेकिन उनकी पूंजी खोज को विरोधाभासी रूप से, फिर भी निष्पक्ष रूप से, विधान के कर्तव्य के रूप में सारांशित किया गया है। हालांकि उनके पास अन्य स्कूलों के साथ संपर्क के बिंदु हैं, वह विधायी युग के न्यायविद् हैं जो उनकी मृत्यु के बाद आते हैं। अवधि के अंत में आते हुए और अटलांटिक को पार करते हुए, हमारे पास इस स्कूल में हमारा प्रतिनिधित्व करने के लिए जॉन हेनरी विगमोर (b. 1863) और रोस्को पाउंड (b. 1870) के नाम हैं। हाल ही में झेरिंग के बारे में लिखे गए ये शब्द हमारे अपने किसी भी रचनात्मक न्यायविद् के लिए आसानी से लागू किए जा सकते हैं: "वह लगातार विधि की केवल तार्किक अभिव्यक्तियों को दिए गए अत्यधिक महत्व के खिलाफ विरोध कर रहा है और विधिशास्त्र के साथ इलाज करने की बेतुकापन है जैसे कि यह एक प्रकार का कानूनी गणित था। उसे वास्तविकता के लिए एक लालसा थी; वह तथ्यों से अलग कल्पनाओं का पालन नहीं कर सकता था।"

- (ख) ऐतिहासिक स्कूल

सभी नहीं - यहां तक कि अधिकांश भी नहीं - न्यायविदों के चेहरे भविष्य की ओर हैं। जैसा कि यह है, विधि भी उनकी खेती के लिए एक उचित और उपजाऊ क्षेत्र है। सचेत परिवर्तन की अवधि में विधि पर काम करने के लिए चिंतनशील दिमाग सैट करें: विशेष परिवर्तनों के प्रति इसका जो भी दृष्टिकोण हो, यह विधि को एक निश्चित चीज नहीं मान सकता है। एक तरफ वे हैं जिन पर विधि की प्लास्टिसिटी एक नई खोज के रूप में उगती है - नवजात रचनात्मक स्कूल। वे जो अनुमोदन करते हैं उसे संहिताबद्ध करेंगे और जो कुछ भी वे अस्वीकार करते हैं उसे फिर से बनाएंगे। वे अतीत के साथ तोड़ देंगे। उनमें से कुछ राष्ट्रमंडलों के लिए संविधान तैयार करने में संकोच नहीं करेंगे जिन्हें उन्होंने कभी नहीं देखा है। उनके अतिरिक्त प्रतिक्रियाएं बुलाते हैं। थिबोट को जर्मनी में सेविग्नी द्वारा जांच में रखा गया है; इंग्लैंड में बेंथम और अमेरिका में डेविड इडले फील्ड को ऐतिहासिक स्कूलों के अपने समकालीन कठिन दिमाग वाले मिलते हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक स्कूलों के सबसे विशिष्ट प्रतिनिधि प्रतिक्रियावादी सिद्धांतों के साथ पहचाने गए हैं, और उन्हें अपनी संभावित दृष्टि की कमी के लिए तदनुसार आलोचना की गई है। विशिष्ट रचनात्मक न्यायविद् जो विधान के बाद आता है, उसकी शक्ति साबित हुई है, एक बड़ा और आशावादी कार्यक्रम है; दूसरी ओर, ऐतिहासिक न्यायविद्, थोड़ा पहले आते हुए, न केवल ऐसे कार्यक्रम की कमी होने की संभावना है, बल्कि अतीत के साथ-साथ भविष्य के लिए अपने प्रबुद्ध संदेह को बढ़ाने के लिए, और विधान की अंतिम शक्ति पर सवाल उठाने के लिए जो कुछ भी इतिहास के लिए तैयार है उससे अधिक करने के लिए। यह वह भाग्यवाद है जो कई लोगों ने इस स्कूल में पाया है। फिर भी सभी ऐतिहासिक न्यायविदों ने प्रतिक्रियावादी नहीं किया है। इंग्लैंड में मेन, और जर्मनी में सेविग्नी ने अपने स्थान पर विधान के मूल्य को मान्यता दी। मैटलैंड, कानूनी इतिहास के मास्टर (सख्ती से एक ऐतिहासिक न्यायविद् नहीं), ने वास्तविक संपत्ति विधि में कोबवे को दूर करने की वकालत करके अपना कैरियर शुरू और समाप्त किया, और हमारे अपने मिस्टर जस्टिस होम्स की तरह, अपने विशाल सीखने का उपयोग रुढ़िवाद की मूर्खता को इंगित करने के लिए अक्सर किया जैसा कि इसकी बुद्धि। कोई भी व्यक्ति ऐतिहासिक चरण से एक पीढ़ी के रचनात्मक चरण में संक्रमण का अधिक शालीनता से प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है जो विधि को एक बदलती घटना के रूप में देखता है, जज होम्स करते हैं। "विधि के तर्कसंगत अध्ययन के लिए," उन्होंने बीस साल पहले कहा था, "काले-पत्र वाला आदमी वर्तमान का आदमी हो सकता है, लेकिन भविष्य का आदमी सांख्यिकी का आदमी और अर्थशास्त्र का मास्टर है।" फिर, "मैं उस समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब सिद्धांत की व्याख्या में इतिहास द्वारा निर्भाई गई भूमिका बहुत छोटी होगी, और सरल अनुसंधान के बजाय हम प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों और उन्हें चाहने के कारणों के अध्ययन पर अपनी ऊर्जा खर्च करेंगे।" लेकिन चाहे केवल अतीत को देखते हुए, या यह देखने के लिए तैयार हों कि भविष्य विधि को विकसित करना जारी रखेगा जैसा कि अतीत ने किया है, ऐतिहासिक न्यायविद् सचेत परिवर्तन की शक्तियों पर कई सीमाओं को पहचानता है। उनकी पसंदीदा सादृश्य भाषा की सादृश्य है। सेविग्नी के दिन से प्रयास, वास्तव में, नई भाषाओं को बनाने के लिए किए गए हैं - लेकिन दुनिया का अधिकांश हिस्सा अभी तक रो या एस्पेरांतो नहीं बोल रहा है, और न ही हम उन राष्ट्रीय कानूनों के लिए एक कृत्रिम सार्वभौमिक विधि को प्रतिस्थापित करने की संभावना रखते हैं जो हमारे बीच बड़े हैं। ऐतिहासिक न्यायविद्, सिर्फ इसलिए कि उनकी विषय वस्तु स्थानीय और राष्ट्रीय तथ्यों द्वारा घेर ली गई है, अपनी परिभाषाओं में एक समझौते के नहीं होंगे - लेकिन यह स्वाभाविक है कि वे उस परिभाषा में खामियों को उठाने की उम्मीद करते हैं जो "आदेश," गैर-ऐतिहासिक आदेश पर जोर देती है। न ही वे बिना आलोचना के प्रकृति के विधि या कारण के विधि को स्वीकार करेंगे। "विधि," ऐतिहासिक न्यायविद् कहता है, "कई शताब्दियों के माध्यम से एक राष्ट्र के विकास की कहानी को मूर्त रूप देता है, और इसे इस तरह से निपटाया नहीं जा सकता है जैसे कि इसमें केवल गणित की एक पुस्तक के स्वयंसिद्ध और परिणाम शामिल हैं।"

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान एंग्लो-अमेरिकन विधिशास्त्र में ऐतिहासिक स्कूल प्रचलित स्कूलों में से एक था। इसके हथियारों के साथ जेम्स कूलिज कार्टर (1827-1905) ने सफलतापूर्वक संहिताकरण को लड़ा, और अमेरिका के सेविग्नी बन गए। इंग्लैंड के लिए हमने पहले ही सर हेनरी मेन का उल्लेख किया है। हालांकि उनका दृष्टिकोण उन्हें एक स्कूल की सीमाओं के भीतर रहने की अनुमति देने के लिए बहुत व्यापक था - उन्होंने अपनी विशेषता में फ्रांस के तुलनात्मक न्यायविदों को पीछे छोड़ दिया - उनके वाक्यांश एंग्लो-अमेरिकन ऐतिहासिक न्यायविदों की सामान्य संपत्ति बन गए हैं: "स्थिति से अनुबंध तक," "कानूनी कल्पनाएं, इक्विटी और विधान," प्रक्रियात्मक विधि के जाल के बीच की खाइयों में मूल विधि की वर्षा, और इसी तरह। मेन के शिक्षण के परिणामस्वरूप, आधुनिक विधान के अधिवक्ताओं के साथ-साथ आलोचकों को विधान के युग में रहने का सचेत रहा है, जो केवल कानूनी इतिहास के अन्य युगों को बंद कर देता है - और वकीलों ने, कम से कम, परिणामस्वरूप वैधानिक विधि के महत्व को कम किया है, अक्सर आम आदमी के आश्चर्य और घृणा के लिए।

जर्मनी में ऐतिहासिक स्कूल इंग्लैंड की तुलना में लगभग पचास साल पहले आया और चला गया। इसका सबसे बड़ा नाम फ्रेडरिक कार्ल वॉन सेविग्नी (1779-1861) है। वह स्कूल के संस्थापक नहीं थे; गुस्ताव हुगो (1764-1844) ने उनसे पहले किया था। न ही उनके काम उनके अपने शिष्यों के रूप में समाप्त हो गए थे, लेकिन उनका प्रभाव जबरदस्त था। उन्होंने तथाकथित प्राकृतिक विधि के चंगुल से विधिशास्त्र को बचाया, इसके "अनंत अहंकार" और इसके "उथले दर्शन" के साथ। दिन का दर्शन सेविग्नी के विधिशास्त्र के लिए रास्ता तैयार कर रहा था। विशेष रूप से, हेगेल (1770-1831) ने ऐतिहासिक स्कूलों की जरूरतों के लिए बिल्कुल उपयुक्त एक दर्शन विकसित किया। स्पष्ट रूप से सेविग्नी ने अपने समय के "बेरूप" को सही ढंग से प्रतिबिंबित किया। क्रिश्चियन वोल्फ के हठधर्मी प्राकृतिक विधि से केवल इसलिए संहिताकरण में कूदना क्योंकि फ्रांस ने एक कोड बनाया था, हालांकि एक बड़ा प्रलोभन, व्यर्थ होता। सेविग्नी 1794 में एक युवा व्यक्ति थे जब अस्पष्टतावादी रहस्यवादी, फ्रेडरिक विलियम II ने प्रशिया को अपना लैङ्क्ट दिया। वह जल्द ही फ्रेडरिक द ग्रेट और

सैमुअल वॉन कोकेजी (1679-1755) की मूल परियोजना के साथ अंतिम उत्पाद की तुलना करने में सक्षम था। फ्रांस, वास्तव में, न केवल पिछली पीढ़ी के दौरान एक घटनापूर्ण राजनीतिक इतिहास द्वारा संहिताकरण के लिए तैयार किया गया था, और एक लंबे समय से चली आ रही राष्ट्रीय एकता और आत्म-चेतना (इसके अठारहवीं सदी के न्यायविदों ने फ्रेंच में लिखा, जर्मनी अभी भी लैटिन का उपयोग कर रहा था), बल्कि प्रकृति के विधि के स्कूल के बहुत पहले के गायब होने से भी। मोंटेस्क्यू (1689-1755) को अक्सर ऐतिहासिक स्कूल के संस्थापक या अग्रदूत के रूप में वर्णित किया गया है। सुझाव आमतौर पर इस टिप्पणी के साथ होता है, एक ओर, कि उनकी ऐतिहासिक विधि दोषपूर्ण थी, और दूसरी ओर कि विधि में सहायता के रूप में इतिहास का अध्ययन मोंटेस्क्यू की तुलना में बहुत पुराना था। क्या अल्लियाटी और कुजास विधि के ऐतिहासिक छात्र नहीं थे, और क्या उनकी भावना फ्रांस में प्राकृतिक विधि अवधि से भी आगे नहीं गई? हालांकि, हमें यहां कानूनी इतिहास के अध्ययन और विधि के प्रति विशेष दृष्टिकोण के बीच अंतर करना चाहिए जो तथाकथित ऐतिहासिक स्कूल ऑफ जुरिसपूडेस को दर्शाता है। इस स्कूल में सबसे पहले यह एहसास है कि हम आज जिसे अवचेतन प्रक्रियाएं कहेंगे, जो विधि के विकास में योगदान करती हैं, और विधि की परिणामी सापेक्षता। उन पुराने स्कूलों से एक विद्रोह है जो मानवता से स्वतंत्र एक परिपूर्ण विधि को स्थापित करते हैं। हम लगभग उस स्थान की पहचान कर सकते हैं जहां मोंटेस्क्यू एक से बाहर निकलता है और दूसरे में आता है। "फारसी पत्र" के इकतीसवें (1721) में वह कहता है, "मैंने अक्सर खुद को यह सोचने के लिए सेट किया है कि सरकार के सभी विभिन्न रूपों में से कौन सा कारण के लिए सबसे अधिक अनुरूप है, और मुझे ऐसा लगता है कि सबसे परिपूर्ण सरकार वह है जो पुरुषों को अपनी प्राकृतिक प्रवृत्तियों और झुकावों के साथ सबसे अधिक अनुसार मार्गदर्शन करती है।" सवाल दार्शनिक अवधि का सवाल है। उत्तर ऐतिहासिक न्यायविद के लिए दरवाजा खोलता है। "एल'एस्प्रेट डेस लोइस" (1748) इस उत्तर का विकास है। यह मानता है कि "राज्य या संविधान का कोई एक सबसे अच्छा रूप नहीं है: कोई विधि सार में अच्छा या बुरा नहीं है। प्रत्येक विधि, नागरिक और राजनीतिक, पर्यावरण के संबंध में विचार किया जाना चाहिए, और उस पर्यावरण के अनुकूलन द्वारा इसकी उत्कृष्टता का न्याय किया जाना चाहिए।" सेविग्नी ने भी इस सिद्धांत को सिखाया, हालांकि यह सच है कि उन्होंने कंडीशनिंग कारकों के रूप में जाति और राष्ट्रीयता के तत्वों पर जोर दिया, जबकि जलवायु, भौगोलिक स्थितियां, सभ्यता के रूपों और डिग्री के अंतर, मोंटेस्क्यू के दिमाग में सभी महत्वपूर्ण थे।

मोंटेस्क्यू के महान प्रभाव की व्याख्या न तो उनके शब्दों की लालित्य से की जा सकती है और न ही कुछ फारसी पत्रों की अशिष्ट अपील से, बल्कि इस तथ्य से कि पुरुषों के दिमाग दार्शनिक सिद्धांतों पर सवाल उठाने के लिए तैयार थे जो इतनी सारी पीढ़ियों के लिए निर्विवाद रूप से रहे थे। एनसाइक्लोपीडिस्ट मोंटेस्क्यू के विधिशास्त्र की दार्शनिक पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक पीढ़ी के लिए फ्रांसीसी विधिशास्त्र में "एस्प्रेट डेस लोइस" पर हमले और बचाव शामिल थे। इसने पुरुषों के दिमाग को कानूनों की परिवर्तनशीलता के लिए खोलने का काम मुश्किल से पूरा किया था जब क्रांति की ताकतों को मुक्त कर दिया गया था।

#### - (ग) दार्शनिक स्कूल

इतिहास के पन्नों को पीछे की ओर मुड़ते हुए हम अपने विधि सुधारक को एक ऐसे युग में सेट कर सकते हैं जब सुधार विधान द्वारा नहीं बल्कि इक्विटी द्वारा है, जब आचरण घोषित उचित और इसलिए विधि के अनुसार घोषित करने के लिए एक अदालत में सहारा लिया जाना चाहिए। वह शायद ही पुस्तकों में विधि के रूप में रचनात्मक न्यायविद के रूप में स्वतंत्र होगा, न ही ऐतिहासिक न्यायविद के रूप में, दुर्घटनाओं और सभी पर इस पर निर्भर होगा। वह सामान्य सिद्धांतों की तलाश करेगा जिसके द्वारा उसके सामने रखे गए विधि का परीक्षण किया जाए, और वह तर्क देगा कि जो इन सिद्धांतों के साथ मेल नहीं खाता है वह विधि नहीं है, हालांकि इसे इतने शब्दों में घोषित किया गया हो सकता है; और इन सिद्धांतों द्वारा क्या निर्धारित किया जाता है वह विधि है हालांकि इसे इतने शब्दों में कभी घोषित नहीं किया गया है। सकारात्मक विधि विधि के लिए एक केवल अनुमान है, और लगातार अदालत को दिखाकर इसके द्वारा सुधार के अधीन है जहां यह कम पड़ता है। यह बहुत कम फर्क पड़ता है कि वह "भगवान के शब्द," या विवेक में अपने सिद्धांतों को पाता है, एक प्राकृतिक विधि नए अवलोकन किया, या प्राचीनों द्वारा खोजे गए प्राकृतिक विधि, चाहे "प्रकृति" का अर्थ मानव प्रकृति या कुछ अलौकिक है - वह एक दार्शनिक न्यायविद है। वह रचनात्मक नहीं है, क्योंकि विधि बनाना उसका व्यवसाय नहीं है, विधि वहां पाया जाना है; फिर भी वह ऐतिहासिक नहीं है - कम से कम मुख्य रूप से नहीं, हालांकि वह अपने सिद्धांतों के रहस्योद्घाटन के लिए इतिहास को एक साधन बना सकता है।

सर फ्रेडरिक पोलॉक ने कानूनी इतिहास में प्राकृतिक विधि सिद्धांत की निरंतरता के बारे में बात की है, लेकिन सर जॉन मैकडोनेल द्वारा एक निष्पक्ष विकल्प सुझाया गया है: कि विधिशास्त्र का इतिहास एक प्राकृतिक विधि की अवधारणा को एक नए रूप में पुनर्जीवित करने के लिए अक्सर नवीनीकृत प्रयास द्वारा चिह्नित किया जाता है, एक "रिचिगेस रेक्ट।" इक्विटी अवधियां आम तौर पर इस प्रकार का विधिशास्त्र विकसित करती हैं।

चुनिंदा सिसरो की स्टोइक्स के प्राकृतिक विधि की स्वीकृति प्रेटर्स के बढ़ते एडिक्ट का दार्शनिक प्रतिबिंब है। इस एडिक्ट के माध्यम से राष्ट्रों के लिए सामान्य विधि (छोटे इतालवी जेंट्स) प्रकृति का विधि बन गया। एक और प्राकृतिक-विधि अवधि में, सत्रहवीं शताब्दी में, यह प्राकृतिक विधि एक बड़े अर्थ में राष्ट्रों का विधि बनना तय था (राज्यों पर बाध्यकारी विधि)। पुराने रोमन अर्थ में राष्ट्रों के विधि से प्रकृति के विधि तक ग्लाइड आज के बिना एक समानांतर नहीं है। तुलनात्मक विधि के एक विस्तृत अध्ययन के बाद एक लोग महसूस करने की संभावना है कि समानताएं अंतर की तुलना में अधिक आवश्यक हैं, और विधि में आवश्यक और

आकस्मिक के बीच एक भेद जस न्यायचूरे के एक चरण या दूसरे में ले जाने की संभावना है। फ्रांस, जैसा कि हम देखेंगे, यूरोप का पहला देश था जिसने एक आधुनिक कोड हासिल किया, कई पीढ़ियों के लिए तुलनात्मक विधिशास्त्र में नेतृत्व किया है। अब जब यह कोड के साथ अपने संबंधों के दूसरे चरण में गुजर रहा है, तो यह ड्रॉइट नेचुरल के पुनर्जागरण को देख रहा है, एक दार्शनिक विधिशास्त्र की विशिष्ट विशेषता। समकालीन इटली एक करीबी दूसरा है। लेकिन दार्शनिक स्कूलों की उत्पत्ति कुछ भी हो, इक्विटी, कानूनी विकास के एक साधन के रूप में, इस सिद्धांत के बिना नहीं फल-फूल सकती है कि सकारात्मक विधि से स्वतंत्र आचरण के लिए एक लागू करने योग्य मानक है। विधायी अवधि का एक न्यायविद् प्राकृतिक विधि के एक आदर्श से प्रेरित हो सकता है; एक टिप्पणीकार मान सकता है कि उसका कोड प्रकृति के फरमानों को मूर्त रूप देता है; लेकिन इक्विटी को प्राकृतिक के लिए अपनी अपील करनी चाहिए। विचार की अस्पष्टता एक बाधा के बजाय एक मदद लगती है। बहुत पहले इक्विटी इंग्लैंड में विधि के साथ समन्वय के रूप में विजयी उभरी, या इसके बजाय इसके लिए बेहतर, अंग्रेजों ने पढ़ा था कि यूटोपिया में विधि प्रकृति का विधि था। हुकर (1553-1600) ने प्रकृति के विधि को मानव विधि के परीक्षणों में से एक के रूप में रखा था। एक विद्वान इतालवी, अल्बेरिकस जेंटिलिस (1551-1611), ने ऑक्सफोर्ड में एक प्राकृतिक-विधि विधिशास्त्र पढ़ाया। बेकन (1561-1626) ने प्रकृति के विधि के अस्तित्व को मान लिया, हालांकि वह शायद इसे एक नए तरीके से तलाश करेंगे। जल्द ही विचार साहित्य की सामान्यताओं में से एक बन गया। नथानेल कलवरवेल (1612-51) ने "प्रकृति के प्रकाश" के बारे में लिखा। दिन के सबसे बड़े विद्वान, जॉन सेलडेन (1584-1654), ने हिब्रूओं के कानूनों से प्राकृतिक विधि का एक प्रकार खींचा। झूच (1590-1661), हॉब्स (1588-1679), कंबरलैंड (1632-1719), लॉक (1632-1704), और इंग्लैंड और कॉलोनीयों में उनके उत्तराधिकारी, कई मामलों में भिन्न होने के बावजूद, सभी चीजों के अंतर्निहित आधार के रूप में प्रकृति के विधि से शुरु करने में सहमत हुए।

विद्वान यूरोप सत्रहवीं शताब्दी में लैटिन भाषा के उपयोग से एकजुट था, और प्राकृतिक विधि की उन्नति इंग्लैंड तक सीमित नहीं थी। वास्तव में, यह वहां उत्पन्न नहीं हुआ। महाद्वीपीय यूरोप में इसके प्रतिनिधियों के पास जाने से पहले यह अच्छा हो सकता है कि विचार के एक और क्षेत्र में प्रकृति का उन दिनों के विद्वानों के लिए क्या मतलब था। इस अवधि की साहित्यिक आलोचना "प्रकृति" शब्द की बहुत शौकीन थी। इसकी बहुत सी बुद्धि और बुद्धिमत्ता अंततः पोप के "एसे ऑन क्रिटिसिज्म" (1711) में अपना रास्ता पाया। "कला के स्रोत, अंत, परीक्षण" के रूप में अनरिंग नेचर को स्थापित करने के बाद पोप स्पष्ट करने के लिए जल्दबाजी करता है कि "प्रकृति" का अर्थ प्राचीनों के शास्त्रीय मानक हैं:

खोजे गए पुराने के वे नियम, विदेशी नहीं,  
अभी भी प्रकृति हैं, लेकिन प्रकृति विधिवत है।

यह विचार इंग्लैंड और महाद्वीप दोनों में सत्रहवीं सदी के साहित्य के माध्यम से चला। इस प्रकार रैपिन (1672) अरस्तू के नियमों के बारे में कहते हैं; "यदि आप उन पर अच्छी तरह से विचार करते हैं, तो आप पाएंगे कि वे केवल प्रकृति को विधिवत करने के लिए बनाए गए थे, उसके कदम से कदम का पालन करने के लिए।" और इसलिए, उस समय में वापस जाना जब रोमन विधि का स्वागत पुनर्जागरण और सुधार के बाद हुआ, हम रोमन विधि के लिए फ्रांस और इटली के मानवतावादी न्यायविदों के उत्साह को समझ सकते हैं: उनके लिए यह प्राकृतिक विधि विधिवत था। यह इससे अधिक था, यह प्रकृति के लेखक की इच्छा थी।

जब हम कुजास के बारे में पढ़ते हैं कि ऐतिहासिक अध्ययन में काम करने वाले जस्टिनियन से वापस पहुंचने में उनकी आश्चर्यजनक है, तो हमें उन्हें हमारे अपने समय के विचारों के साथ नहीं देना चाहिए। वह सेविग्नी के सिद्धांत की आशा नहीं कर रहा था कि सच्चा विधि एक विकास है, एक विकास; वह बस रोमन विधि के स्रोतों की तलाश कर रहा था, प्रकृति के विधि के अपवित्र फव्वारे का मुखिया। निचले रूपों से उच्च तक विकास में विश्वास करने से दूर, वह एक स्वर्ण युग में वापस जाने की कोशिश कर रहा था। इसलिए यह उसके स्कूल को आधुनिक अर्थों में ऐतिहासिक स्कूलों के साथ भ्रमित करने के लिए भ्रामक है। वह केवल महाद्वीपीय विधि में commentation चरण के दूसरे चरण का प्रतिनिधित्व करता है। पहली, बारटोलिस्ट की, नियमों के पदार्थ के एक मिनट अध्ययन के साथ खुद को चिंतित करके कोड के शब्दों को खाली करने के लिए लाया। समय के साथ, यह सच है, इसने अपने भाषणों के नीचे कोड को दफन कर दिया था। मानवतावादियों ने इस सभी मध्ययुगीनता के खिलाफ विद्रोह किया, यह मानते हुए कि वे बर्बर लैटिन के scholastic scriblers की तुलना में रोमन विधि की सच्ची भावना को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। टीकाओं और टिप्पणियों को कूड़ेदान-ढेर पर भेजा जाना था, और सदियों की न्यायिक कार्य भूल गईं। यह शायद ही एक ऐतिहासिक कार्यक्रम है, लेकिन इसके पीछे एक दर्शन है - पहले केवल मंद रूप से महसूस किया गया, लेकिन जल्द ही यूरोप में हर न्यायविद् और सार्वजनिक का सामान्य ज्ञान: रोमन विधि कारण है, प्रकृति का विधि।

यहां केवल कुछ बड़े नामों का उल्लेख करने के लिए पर्याप्त होगा। स्पेन सीखने के पुनर्जागरण से पहले यूरोप का सबसे प्रमुख राष्ट्र रहा था। इसके रोमनेस्क विधि ने अल्फोन्सो द वाइज (आर। 1252-82) के तहत एक कोड का रूप ग्रहण कर लिया था और आम तौर पर कोड का पालन करने वाली व्याख्या के कई शताब्दियों के बाद, वास्केज़ (fl. 1509-66), विक्टोरिया (सोलहवीं शताब्दी), सोटो (1494-1560), और सुआरेज़ (1548-1617) ने प्रकृति के विधि को विकसित किया जो कोड की आरंभ के दौरान उपेक्षित किया गया था। बाल्थाजार अयला (1548-84) ने इस सीखने को नीदरलैंड में ले लिया। डच स्कूल में, गोटियस (1583-1645) ने प्रकृति के विधि की नींव पर अंतरराष्ट्रीय विधि का निर्माण

किया। विनियम (1588-1637), स्पिनोज़ा (1632-77), और बिन्करशोएक (1673-1743) में समाप्त होने वाली सार्वजनिक की एक प्रतिष्ठित लाइन एक ही नींव पर अपनी इमारत जारी रखती है। फ्रांस में बोडिन (1550-1627) अपने गणराज्य को अवधारणा पर आधारित करता है। गोडेफ्राय (1587-1652), फेवर (1557-1624), डोमेट (1625-95), डीएग्यूसो (1668-1751), और पोथियर (1699-1772), और स्विट्जरलैंड में बुलमाक्वी (1694-1748) और वाटेल (1714-67), विचार विकसित करते हैं। इटली में बहु-पक्षीय वीको (1668-1743), अंग्रेजी बेकन की तरह, यह क्या है और इसे कैसे खोजना है इसका एक अधिक आधुनिक विचार है - वह ऐतिहासिक सापेक्षता की अपनी मान्यता में मॉटेस्क्यू का अनुमान लगाता है - लेकिन वह अभी भी प्रकृति के विधि को पकड़ता है। बेकरिया (1735-83), फिलांगिएरी (1752-88), और लेखकों की एक श्रृंखला जो फ्रांस के स्कूलों और जर्मनी के लोगों के बीच vacillate करते हैं, इटली में अपने शांत होने के लिए परंपरा को आगे ले जाते हैं। जर्मनी पश्चिमी यूरोप की राष्ट्रीयताओं का आखिरी था जो प्रकृति के विधि को विकसित करता था। यह स्वीडिश बैरन पुफेंडोर्फ (1632-94), जर्मनी में प्रकृति और राष्ट्रों के विधि के पहले प्रोफेसर के माध्यम से डच स्कूल से उधार लिया गया है, विश्वव्यापी लीबनिट्ज़ (1646-1716) द्वारा स्वीकार किया गया है, और कम रोशनी, राचेल (1628-91), खुले दिमाग वाले थॉमसियस (1655-1728), गेरहार्ड (1682-1718), गुंडलिंग (1671-1729), एचवाल (1719-72)। लेकिन इसके दावों की चरम सीमा उस आदमी के काम में पहुंचती है जो खुद को प्रोफेसर जेनेरिस ह्यूमानी कहता है: क्रिश्चियन वोल्फ (1679-1754), अपने "इंस्टिट्यूशंस जूरिस नेचुरे एट जेंटियम इन क्विबस एक्स इप्सा होमिनिस नेचुरा कंटिन्यूओ नेक्सू ओम्नेस ऑब्लिगेशन्स एट जुरा ओमनियो डेड्यूकेंटूर" (1754) में, अनजाने में प्रकृति के विधि को विज्ञापन बँतुकापन तक कम कर देता है और अपने दुश्मनों के हाथों में खेलता है। अंत में, जैसा कि हमने देखा है, यह प्रत्येक देश के विधिशास्त्र में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में गायब हो जाता है: पहले फ्रांस और इटली में, बाद में जर्मनी में, फिर इंग्लैंड में, और अंत में अमेरिका में, राष्ट्रीय महत्व के दस्तावेजों में इसके कुछ नारों के पेटीफिकेशन के बावजूद। न्याय के हॉल से दूर, दार्शनिक अभी भी इसके साथ जादू करते हैं, सुधारक इसकी अपील करते हैं - लेकिन इस सीमा के साथ: कोई भी यह तर्क नहीं देता है कि यह प्रोप्रियो विगोरे के हमारे अदालतों का विधि है। केवल स्कॉटलैंड में यह अभी भी सम्मानित था। महाद्वीपीय परंपराओं के साथ शुरुआत करते हुए, इसके वकीलों को उन्नीसवीं शताब्दी में संबंधित प्रणालियों के आंदोलनों में साझा करने से रोका गया था, परिणामस्वरूप यह अभी भी प्रकृति के विधि को एक सदी के बाद भी संजोए रखता था जब इसे कहीं और उपेक्षित किया गया था। इस युग का विशिष्ट कार्य जेम्स लॉरिमेर का "इंस्टिट्यूट्स ऑफ लॉ, विधिशास्त्र के सिद्धांतों पर एक ग्रंथ जैसा कि प्रकृति द्वारा निर्धारित किया गया है"।

सभी दार्शनिक स्कूलों को सूट करने वाले विधि की परिभाषा रखना शायद ही संभव है, लेकिन अगर हम इसे प्रयास करते हैं, तो हम निश्चित रूप से किसी संप्रभु के औपचारिक अधिनियमन या उच्चारण या यहां तक कि इतिहास की दुर्घटनाओं के रूप में किसी भी चीज़ के संदर्भ में यह रेखा खींचने से बचेंगे कि विधि क्या है और क्या नहीं है, सिवाय इसके कि उन दुर्घटनाओं ने प्रकृति को प्रभावित किया। हमें सार्वभौमिक प्रयोज्यता के साथ कुछ की तलाश करनी चाहिए; हमें आवश्यक की तलाश करनी चाहिए और आकस्मिक और मनमाने से बचना चाहिए; और सबसे बढ़कर हमें विधि को (कम से कम आजकल) मानव प्रकृति से जुड़ी और बढ़ती हुई किसी चीज़ के रूप में परिभाषित करना चाहिए।

- (घ) विश्लेषणात्मक स्कूल

यह धारणा कि विधि परस्पर संबंधित सिद्धांतों का एक निकाय है न कि केवल नियमों का एक अव्यवस्थित चयन, एक पारलौकिक प्राकृतिक विधि के साथ अटूट रूप से जुड़ा नहीं है। यह तार्किक रूप से सकारात्मक विधि पर लागू होता है, और विश्लेषणात्मक स्कूल द्वारा ऐसा लागू किया गया है। निश्चित रूप से, नाम में ही ऐसा कुछ नहीं है जो उन लोगों के संदर्भ में इसके उपयोग को रोकता है जो एक कोड या कानूनों का विश्लेषण करेंगे। इस प्रकार के न्यायविद् हैं और उन्हें कभी-कभी विश्लेषणात्मक के रूप में वर्णित किया जाता है। लेकिन विश्लेषणात्मक स्कूल काफी अलग है। यह आकस्मिक विवरणों में रुचि नहीं रखता है। यह सार्वभौमिक सकारात्मक और नकारात्मक में बोलता है। यह सभी कानूनों को परिभाषित करेगा, सभी कानूनों को वर्गीकृत करेगा, प्रत्येक विधि की आवश्यक विशेषताओं की खोज करेगा, और एक याईस्टिक प्राप्त करेगा जिसके द्वारा सभी कानूनों को मापा जा सकता है। इसके आलोचकों ने इस पर आरोप लगाया है कि यह अपने निर्णयों के प्रभाव की तुलना में एक प्रणाली के तार्किक कार्य में अधिक रुचि रखता है। फिएट जस्टिशिया, रुएट कोएलम। यह वास्तव में एक गंभीर आरोप होगा, यदि स्कूल ने विधि बनाने की प्रक्रिया में लगे होने का दावा किया - लेकिन ऐसा नहीं है। विश्लेषणात्मक विधिशास्त्र तब अपनी उपस्थिति बनाता है जब काम करने के लिए विधि का एक निकाय होता है, और, क्या अधिक है, एक विधि जो विश्लेषण के योग्य माना जाता है क्योंकि यह अपने आप में सुसंगत और सर्व-समावेशी है। न तो विश्लेषणात्मक और न ही दार्शनिक स्कूल एक आधुनिक विधानमंडल के टुकड़े-टुकड़े काम पर, न ही सकारात्मक विधि के एक कठोर कोड के उदार हाथ के तहत फल-फूल सकता है। यह नहीं कि आप पुरुषों को दर्शन करने से मना कर सकते हैं; लेकिन आप अपने कानूनी दर्शन को कम या ज्यादा निरर्थक बना सकते हैं जिस रूप में आप उनके विधि डालते हैं। दार्शनिक और विश्लेषणात्मक विधिशास्त्र में एक और चरण समान है। उत्तरार्द्ध, यह सच है, प्रकृति के विधि के बारे में कुछ नहीं कहता है - हालांकि यह आसानी से इसमें चूक सकता है, या एक सिद्धांत या दूसरे द्वारा सकारात्मक और पारलौकिक कानूनों के बीच की खाई को पाट सकता है। फिर भी, यह धारणा कि कानूनों में एक सार्वभौमिक तत्व है जो विश्लेषण का आधार बन सकता है, यह धारणा कि एक कानूनी प्रणाली में ऐसे भाग हैं जो एक साथ फिट होते हैं जितना साफ, जितना अनिवार्य रूप से, गणित के संयोगों के रूप में आश्चर्यजनक रूप से, एक प्रकार की स्वीकृति है कि प्रकृति का काम विधि में दिखाई देता है। जैसा कि अठारहवीं शताब्दी के कई लेखकों ने जो दार्शनिक और विश्लेषणात्मक दोनों थे, व्यक्त किया, उन्होंने "प्राकृतिक क्रम" में कानूनों की व्यवस्था करने की मांग की। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि विद्वान डॉक्टर हेनरिक ब्रूनर ने ऑस्टिन और बेंथम के सिद्धांतों को नेचुरेक्टलिच के

रूप में वर्गीकृत किया।

इस स्कूल के सबसे बड़े प्रतिपादक, बौद्धिक रूप से ईमानदार ऑस्टिन, इंग्लैंड में इसके सक्रिय करियर के अंत में आते हैं, शुरूआत में नहीं जैसा कि अक्सर गलती से माना जाता है। इसके अलावा, ऑस्टिन के ब्रह्मांड के सिद्धांत में सब कुछ विश्लेषणात्मक स्कूल के लिए आवश्यक नहीं है। इस प्रकार यदि हम विधि के लिए एक परिभाषा की तलाश करते हैं जो स्कूल के लिए विधि का एक वैज्ञानिक अध्ययन करने का प्रयास करता है (जब सभी सहमत हैं कि यह सहसंबद्ध सिद्धांतों का एक निकाय है), हम ऑस्टिनियन कमांड के लिए मजबूर नहीं होंगे, हालांकि यह बहुत अच्छी तरह से सूट करेगा, वास्तव में जैसा कि यह सकारात्मक विधि के किसी भी सिद्धांत में होगा। हम निश्चित रूप से खुद को पंता लगाने योग्य तक सीमित करेंगे, शायद "नगरपालिका" विधि के लिए, और इस सुझाव से बचना चाहिए कि मनुष्य जिस प्रकार के विधि से हम निपटते हैं उसे बदलने में नपुंसक है, और दूसरे चरम पर, कि विधि विधि निर्माता की असंबंधित सनक या पूर्व पोस्ट फैक्टो डिक्ली की एक श्रृंखला है। ऑस्टिन ने इंग्लैंड में विधान की शक्ति के प्रकट होने से पहले चुपचाप अपना काम किया। कि उनके सूत्र उनकी मृत्यु के बाद स्पष्ट होने वाली परिस्थितियों के लिए आसानी से अनुकूल थे, उनके काम की पूर्णता के लिए एक अद्भुत गवाही है। लेकिन उनका काम विधायी अवधि का नहीं है। प्रोफेसर हॉलैंड, जो इसे जारी रखने का प्रयास करते हैं, हर बार एक नया विधि पारित होने पर अपनी पुस्तक को बदलना होगा। सबसे अच्छा विश्लेषणात्मक विधि समय-समय पर विधि की स्थिति की एक स्टॉकटेकिंग प्राप्त कर सकती है। सच्चाई यह है कि सामान्य सिद्धांत अब हमारे विधि में सर्वोच्च नहीं हैं, और हम आज एक विश्लेषणात्मक विधिशास्त्र नहीं लिख सकते हैं जो विधि की जीवित, बढ़ती सामग्री के लिए एक प्रोक्रस्टियन बिस्तर नहीं होगा। ऑस्टिन का संबंध, मैंने सुझाव दिया है, अतीत के साथ है। उन्होंने ब्लैकस्टोन के सिद्धांतों पर काम किया। ब्लैकस्टोन (1723-80) ने बदले में हेल के विधि के विश्लेषण का उपयोग किया था। हेल की शताब्दी (1609-76) में सकारात्मक विधि के विधिशास्त्र और प्राकृतिक विधि के दार्शनिक विधिशास्त्र के बीच अंतर को पाटने के लिए दो प्रसिद्ध प्रयास किए गए थे। हॉब्स ने सिखाया कि समाज में मनुष्य ने प्रकृति की युद्धरत स्थिति से बचने के लिए अपने सभी प्राकृतिक अधिकारों को आत्मसमर्पण कर दिया। लॉक ने सिखाया कि पुरुषों ने अपने सकारात्मक विधि के माध्यम से प्रकृति के आदेशों को निष्पादित करने के लिए सरकारों को संगठित किया। अंतर कम से कम लॉर्ड कोक द्वारा मान्यता प्राप्त था जब उन्होंने "विधि के कृत्रिम कारण और निर्णय" को "प्राकृतिक कारण" के साथ विपरीत किया। उनके महान समकालीन और विरोधी, बेकन, विचारकों की एक श्रृंखला में पहले थे जिन्होंने इस कृत्रिम कारण को प्राकृतिक कारण तक कम करने का प्रस्ताव रखा।

अन्य देशों में दार्शनिक स्कूल के साथ किसी प्रकार का विश्लेषणात्मक स्कूल; अर्थात्, किसी प्रकार के सिद्धांत-साधक उन लोगों के काम को पूरक करते हैं जो कानूनों के निर्माण में जीवन में सिद्धांतों को लागू करेंगे। समकालीन फ्रांस में (अब दार्शनिक चरण में फिर से प्रवेश कर रहा है) हमें पेरिस के प्लानियोल के बारे में बताया गया है, "जिनकी पुस्तकें 'एलिमेंट्री जूरिसप्रुडेंस' शीर्षक से सबसे निकटता से प्रतिनिधित्व करती हैं जिसे हम 'विश्लेषणात्मक विधिशास्त्र' कहने के आदी हैं" महाद्वीप के अठारहवीं शताब्दी के न्यायविदों के बीच विश्लेषकों को दार्शनिकों से अलग करना थोड़ा कठिन होगा, क्योंकि उस समय विशेष धारणा के कारण कि रोमन विधि और प्रकृति का विधि समान थे। जर्मनों में से एक, हेनेकियस (1681-1741), "एलिमेंटा जूरिस सिविलिस सेकंडम ऑर्डिनम पैडेक्टारम" (1740) के लेखक, सर जेम्स मैकिंटोश ने कहा कि वह किसी भी विषय पर प्राथमिक पुस्तकों के सबसे अच्छे लेखक थे जिनसे वह परिचित थे। अन्य जिन्होंने विश्लेषणात्मक पुस्तकों का उत्पादन किया, केवल "रोमन विधि के सार जो इसके विवरणों से छीन लिए गए," आइकस्टेड (1702-76), नेटलब्लाड (1719-91), बॉमगार्टन (1714-82), और बाख (1721-58) थे। हालांकि, मुझे लगता है कि लीबनिट्ज़ जर्मनों में से किसी भी के रूप में "विश्लेषणात्मक न्यायविद" के नाम के योग्य हैं। यह वह थे जिन्होंने संस्थानों में विधि के अतांरिक विभाजन की जोरदार आलोचना की: व्यक्तियों की, चीजों की, कार्यों की। सभी कार्य चीजों के संबंध में व्यक्तियों के बीच हैं। तदनुसार उन्होंने एक नए विभाजन की योजना बनाई और जस्टिनियन के कोड, उपन्यास, संस्थान और डाइजेस्ट को गले लगाने वाले एक काम में इसे अपनाने का आग्रह किया। उन्होंने माना कि ज्यामिति की विधि और परिशुद्धता के करीब कुछ भी नहीं पहुंचा जैसा कि रोमन विधि ने किया। और दार्शनिक अवधि के दौरान अन्य लोग थे जिन्होंने रोम के सकारात्मक विधि का विश्लेषण करने का प्रयास किया, यहां तक कि महान व्यवस्थाकार, कुजास के कड़वे विरोधी, डोन् (1527-91) तक वापस।

- (ड) तुलनात्मक-क्षमाप्रार्थी स्कूल

अंत में हमें इतिहास के एक और पृष्ठ को वापस उस बिंदु पर लौटने दें जहां कानूनी अध्ययन टिप्पणीकरण द्वारा है, और विकास गुप्त है। यहाँ भी ऐसे न्यायविद हैं जो अपनी दृष्टि को दिए गए विधि तक सीमित रखते हैं और अन्य जो नए विचारों और मानकों के लिए चारों ओर देखते हैं, हालांकि दोनों वर्गों की गतिविधि की सीमा अनिवार्य रूप से सीमित है। बेचैन आत्मा क्या कर सकती है जब एक परिपूर्ण, या माना परिपूर्ण, कोड के साथ टिप्पणीकारों के एक समूह के बीच सेट किया जाता है - उदाहरण के लिए, आधुनिक जर्मनी में, या पिछली शताब्दी के फ्रांस में? दोनों ही उदाहरणों में जो उल्लेख किया गया है, बचने का सबसे लोकप्रिय रास्ता तुलनात्मक विधि के माध्यम से रहा है। इस क्षेत्र में उन्नीसवीं शताब्दी के फ्रांस में महान नामों में फस्टेल डी कौलांगेस, डारेस्ट, गाइड, लावेल्ले, लेटर्नाऊ, टार्डे, अबॉइस डी जोउबैविले, भाइयों रेविलाउट, तुलनात्मक कानूनी इतिहास के विभाग में हैं; और तुलनात्मक समकालीन विधि के क्षेत्र में फ्रांस लंबे समय से नेतृत्व में रहा है। कॉलेज डी फ्रांस में 1830 की शुरूआत में तुलनात्मक विधि की एक कुर्सी थी, और दूसरी, सोरबोन में आपराधिक विधि तक सीमित थी। फ्रांसीसी सोसाइटी डी लेजिसलेशन कॉम्पेयर, 1869 में स्थापित, अपनी तरह का सबसे पुराना है। हाल ही में जर्मनी ने इस

क्षेत्र को फिर से खोजा है और जोसेफ कोहलर (b. 1849) और उनके सहयोगियों के काम के माध्यम से इसका कब्जा ले लिया है। तुलनात्मक विधि के अध्ययन के लिए जर्मन समाज फ्रांसीसी की तुलना में एक पीढ़ी छोटे हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के इटली, फ्रांस की तरह, एक कोड से सुसज्जित था। हालांकि यह एक देशी कोड नहीं था, हालांकि इतालवी राष्ट्रीयता अपने सबसे निचले बिंदु पर पहुंच गई थी, शताब्दी के मध्य में एमेरिको अमारी (d. 1870) ने अपना "क्रिटिका डी उना साइंजा डेला लेजिसलेज़िओनी कॉम्पैरेट" प्रकाशित किया, तुलनात्मक कानूनी इतिहास में एक कार्य, या आधुनिक अर्थ में तुलनात्मक विधिशास्त्र। हालांकि आज इंग्लैंड और अमेरिका में तुलनात्मक विधि पर थोड़ा ध्यान दिया जा रहा है, एक सटीक समानांतर के लिए हमें उन दिनों में वापस जाना होगा जब अंग्रेजी न्याय अभी भी इक्विटी के साथ अप्रभावित था। यहां हम विधिशास्त्र के नाम के योग्य बहुत कम पाते हैं, लेकिन हम कई तुलनावादियों को पाते हैं जो नवीनतम जर्मनों के साथ उनके सामान्य दृष्टिकोण में एक उल्लेखनीय समानता रखते हैं।

सर जॉन फोर्टेस्क्यू (d. circa 1476), उदाहरण के लिए, फ्रांस के लोगों की तुलना में अपने देश के अपराधियों के लिए भी एक अच्छा शब्द है। हमने पहले ही देखा है कि प्राचीन दुनिया में कैसे रोम के सख्त विधि और इतालवी जेंट्स के कानूनों के बीच अंतर के अवलोकन ने इक्विटी के लिए एक कदम पत्थर के रूप में काम किया। रोमन विधि के इतिहास में अगली महान तुलनात्मक अवधि तब आई जब इंपीरियल और क्रिश्चियन विधि टकराने के लिए पर्याप्त निश्चित हो गए। एक रूप या किसी अन्य में यह पूरे मध्य युग में चला, पोप और सम्राट ईश्यापूर्वक एक-दूसरे के प्रभुत्व को देख रहे थे। विदेशी प्रणालियों के अध्ययन के लिए उद्देश्य हमेशा एक जैसा नहीं होता है। वास्तव में, रोमन कहानी हमें विश्वास दिलाएगी कि विधि को एक बार संहिताकरण के आधार के रूप में अपनाया गया था। ग्रीक परंपरा विश्लेषण के उद्देश्य से अरस्तू को संविधानों के संग्रह का श्रेय देती है। लीबनिटज़ ने एक बार यह विचार फेंक दिया कि एक थिएटरम लीगेल होना चाहिए, विधान का एक सार्वभौमिक ऐतिहासिक और तुलनात्मक सर्वेक्षण। मॉर्टेस्क्यू ने एक तुलनात्मक अध्ययन में अपने देशवासियों के विश्वास को विधि की अपरिवर्तनीयता में हिलाने का एक साधन देखा। मेन ने इसे अंग्रेजी कानूनी इतिहास की कुंजी के रूप में इस्तेमाल किया। उन्नीसवीं शताब्दी के नवशतविज्ञानियों और मानवविज्ञानियों ने किसी विशेष न्यायिक उद्देश्य के साथ (सिवाय इसके कि उनके कई नस्लीय सिद्धांतों में निहित हो सकता है) तुलनात्मक भाषाविज्ञान या लोकगीत के मार्ग के माध्यम से इसे आया है। कभी-कभी हमारे विधानमंडल अपनी विशेष समस्याओं में उनकी मदद करने के लिए अन्य विधानमंडलों के काम की जांच करते हैं। वास्तव में कानूनों की तुलना एक या दूसरे उद्देश्य के लिए विधि के किसी भी चरण में उपयोगी और दिलचस्प पाई जा सकती है। फिर भी ऐसे समय होते हैं जब महान विचारक "किसी के अपने सटीक शरीर रचना विज्ञान" के पक्ष में "सभी प्रणालियों के एक बेकार क्विंटेंसेंस" को अस्वीकार करते हैं, जब विधिशास्त्र को विधि के दिए गए निकाय के कुछ उपचार के रूप में समझाया जाएगा। सामान्य तौर पर, मेरा मानना है कि इंग्लैंड और अमेरिका के ऑस्टिनियन, ऐतिहासिक न्यायविद् और रचनात्मक न्यायविद् सहमत हैं कि हमारी विधि की प्रणाली आत्मनिर्भर है, और यह कि इसे अन्य प्रणालियों के संदर्भ के बिना संतोषजनक ढंग से अध्ययन किया जा सकता है। तुलनात्मक अध्ययन के अपने भक्त हैं, लेकिन उनके काम को कम या ज्यादा सजावटी माना जाता है। यहां तक कि सर फ्रेडरिक पोलॉक, जिन्होंने इसे लोकप्रिय बनाने के लिए अपना हिस्सा किया है, हमें बताते हैं कि ऑस्टिन के साथ वास्तविक परेशानी यह नहीं थी कि उन्होंने विधि की अन्य प्रणालियों की उपेक्षा की, लेकिन यह कि वह अंग्रेजी विधि के बारे में पर्याप्त नहीं जानते थे। कई राय हैं, और आश्चर्यजनक नहीं, द्वितीय इंग्लैंड में कि एक एकल कानूनी प्रणाली तक सीमित विधिशास्त्र आत्मनिर्भर है। फिर भी ऐसे अवसर होते हैं जब विदेशी प्रणालियों की ओर मुड़ना स्वाभाविक लगता है और ऐसे समय जब वकील का दृष्टिकोण जो स्थानीय प्राधिकरण के अभाव में एक "अच्छी तरह से तर्कित" विदेशी मामले का हवाला देता है, पुराना और महामारी बन जाता है। वह बल जो पुरुषों को विदेशी प्रणालियों में देखने के लिए प्रेरित करता है, वह मूल रूप से उस बल से अलग नहीं है जो हमारे अपने वकीलों को समय-समय पर विदेशी सारांशों में देखने के लिए प्रेरित करता है -

यह सैद्धांतिक के साथ-साथ व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए स्थानीय प्रणाली की सीमाओं की सबसे पहली प्राप्ति है। परिणामस्वरूप तुलनात्मक स्कूल एक ऐसे देश में बसे, संहिताबद्ध विधि की उम्र का एक बाद का उत्पाद है जहां से यह पहुंचता है। यह पहुंच खंडित होने की संभावना है, स्केची, हीनता के किसी सामान्य सिद्धांत पर आधारित नहीं है, बल्कि केवल व्यावहारिक जरूरतों पर। वास्तव में व्यावहारिक कारणों से यह उस परिकल्पना में छिपा होने की संभावना है कि जो विदेशी प्रणाली में व्यक्त किया गया है वह हमारे अपने में निहित है। दूसरा पक्ष, वह पक्ष जो आयात का विरोध करता है, वह है जो आम तौर पर विधि के साहित्य में खुद को अधिक स्पष्ट रूप से सुना जाता है। इंग्लैंड में फोर्टेस्क्यू और सेंट जर्मन, सबसे पहले फ्रांसीसी तुलनावादियों और आज के जर्मनों की तरह, क्षमाप्रार्थी लिखते हैं। इनमें से अंतिम अपने वर्गलीचेंडे रेक्टर्सविसेंसचाफ्ट को एक यूनिवर्सलरेक्टर्सगेशिच्चे बनाते हैं, सभ्यता का एक प्रकार का इतिहास जिसमें उनकी अपनी स्थिति को महान चरमोत्कर्ष के रूप में दिखाया गया है जिसकी ओर ब्रह्मांड इन सभी वर्षों में प्रयास कर रहा है, और जिसमें प्रत्येक राष्ट्रीयता को अंतिम परिणामों में अपने छोटे योगदान के लिए थोड़ी मान्यता दी जाती है। सौभाग्य से सभी क्षमाप्रार्थी इस चरम सीमा तक नहीं जाते हैं। लेकिन यह सब उत्साह इस बात से इनकार करने पर बर्बाद नहीं होता है जो कोई भी दावा नहीं करता है, क्योंकि ऐसी अवधियों के वर्तमान में यदि लिखित विधिशास्त्र में नहीं, तो कोड के पहले दिनों का सिद्धांत गंभीरता से पूछताछ की जा रही है।

- (च) टीकात्मक स्कूल

अभ्यास में आपका सच्चा टिप्पणीकार माना जाने वाला परिपूर्ण कोड के प्रवर्तन से संबंधित है, और उसका सिद्धांत केवल उस कोड को समझाने के उचित तरीकों की तलाश करता है। यह व्याख्याशास्त्र या टीका से संबंधित है। अजीब तरह से, जर्मनी में जुरिसप्रुडेज शब्द इस प्रकार की गतिविधि के लिए खड़ा है, जबकि रेक्टर्सविसेंसचाफ्ट और रेक्टर्सफिलोसोफी को शब्द के हमारे अपने अर्थ के लिए गढ़ा गया है।

लेकिन उनकी रेक्टसविसेंसचाफ्ट भी अब मुख्य रूप से कोड का वैज्ञानिक अध्ययन है। कार्ल गैरिस की "साइंस ऑफ लॉ" (1887, अंग्रेजी अनुवाद, 1911) जैसी पुस्तक एक कोड पर विचार करने वाले देश में नहीं लिखी जा सकती थी। यह विश्लेषणात्मक स्कूल का नहीं बल्कि टीकात्मक का है, क्योंकि यह विधि का विश्लेषण नहीं करता है, यह केवल "बर्गरलिचेस गेसेट्सबुच" का विश्लेषण करता है। "यह स्वीकार किया जा सकता है," डीन पाउंड "रेक्टसविसेंसचाफ्ट" पर गैरिस के अपने परिचय में कहते हैं, "कि विधिशास्त्र की सामग्री का एक व्यवस्थित सर्वेक्षण अति-अमूर्तता के कारण आसानी से विफल हो सकता है। लेकिन हाल के जर्मन ग्रंथों में त्रुटि होती है, यदि बिल्कुल भी, विपरीत दिशा में। हर बिंदु पर पाठ को जर्मन सिविल कोड से मजबूती से जोड़ा गया है।" फ्रांस ने सौ साल पहले "कोड नेपोलियन" पर बिल्कुल इस प्रकार का काम तैयार किया था। हमारे अपने विश्लेषणात्मक स्कूल के अवशेष ऐसा करने में टीकात्मक स्कूल के साथ हाथ मिलाने के लिए जीवित रह सकते हैं जिसे हमारे संहिताकरण की प्रगति के रूप में दिखाई देना होगा; लेकिन सचेत या अचेतन रूप से उन्हें ऐसा करने में "सामान्य रूप से विधि" की सभी अवधारणाओं को छोड़ना होगा। शायद हमें इस विशुद्ध रूप से व्याख्यात्मक कार्य के लिए "विधिशास्त्र" नाम से इनकार करना चाहिए। यह विधि के सिद्धांतों का लुप्त बिंदु प्रतीत होता है। लेकिन इसकी भी विधि की अपनी परिभाषा है। विधि सकारात्मक विधि है। विधान इसका सामान्य रूप है। दर्शन, इतिहास, विश्लेषण, तुलना, सभी के यहां अपने स्थान हैं, लेकिन वे अधीनस्थ स्थान हैं। वे टीका की दासियां बन जाती हैं।

- लोकप्रिय विधिशास्त्र का महत्व

मैंने दुनिया के न्यायविदों के बीच महान नामों से अपने उदाहरण खींचे हैं। बहुत हद तक वे अपने समय में सर्वश्रेष्ठ राय और सबसे शक्तिशाली राय का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहां और वहां एक प्रतिभा - एक बेकन, एक लीबनिटज़, एक वीको, एक बेंथम, या एक मेन - अपने परिवेश से सिर और कंधे ऊपर खड़ा है, या एक सनकी व्यक्ति - शायद कुछ समान नामों को उदाहरण के रूप में दोहराया जा सकता है - जानबूझकर अपने सहयोगियों से हट जाता है। एक अर्थ में प्रत्येक विधिशास्त्र के सबसे महान प्रतिपादक छोटे अधिवक्ताओं, अंधे पक्षपातियों से कुछ हद तक अलग खड़े हैं। लेकिन हमारा वर्तमान अध्ययन बड़े आंदोलनों, सामान्य रुझानों से संबंधित है। हमें याद रखना चाहिए कि एक युग के विधिशास्त्र और इसके प्रथाओं के बीच संबंध कुर्सी के विधिशास्त्र, प्रोफेसरेनफिलोसोफी डेर फिलोसोफी-प्रोफेसरेन तक सीमित नहीं है। लोकप्रिय विधिशास्त्र, उस व्यक्ति का जो नहीं जानता कि उसके पास कोई विधिशास्त्र है, महत्व और प्रभाव की स्थिति में ऊंचा है। यह शायद ही उम्मीद की जा सकती है कि सामान्य व्यवसायी किसी एक स्कूल के साथ स्थायी गठबंधन बनाएगा: आज उसे एक सख्त निर्माण की जरूरत है, कल एक ढीला उसकी मदद कर सकता है; एक मामले में वह जोर देता है कि वह इसे बंधन में नहीं पा सकता है, दूसरे में उसे एक उच्च विधि की अपील करना आवश्यक लगता है जिसमें न्याय दया के साथ समशीतोष्ण है। केवल न्यायाधीश और पेशेवर विधि शिक्षक सचेत रूप से स्कूलों के साथ खुद को संरेखित करने में सक्षम प्रतीत होते हैं, और यह महत्वपूर्ण है कि अमेरिका में एक शिक्षण पेशे के विकास विधिशास्त्र में रुचि के जागरण के साथ मेल खाता है। लेकिन व्यवसायी भी समय के रुझान के साथ आगे ले जाया जाता है और इसे नियंत्रित करने में मदद करता है। मुझे पता है कि विद्वानों के बीच एक महान प्रलोभन है कि ब्लैकस्टोन के पहले अध्यायों पर पाले गए अमेरिकी वकील के न्यायिक सिद्धांतों को तुच्छ समझा जाए, और उन लोगों पर व्यंग्य किया जाए जो सिद्धांतों की खोज कर रहे हैं जो कुछ अधिक "उन्नत" देश में सभी को छोड़ दिया गया है; लेकिन जब तक किसी का विधिशास्त्र अपने विधि के साथ कदम से कदम मिलाकर प्रगति नहीं करता है, विधिशास्त्र जुरिस्टिसचेन बेग्रिफ्सहिमेल में रहेगा और व्यावहारिक वकील द्वारा तिरस्कृत किया जाएगा। हम अपने कोड को आयात किए बिना जर्मनी से तैयार विधिशास्त्र आयात नहीं कर सकते हैं, और उस मामले के लिए इसकी पूरी कुल्चुर। हमें अपने विधि में पाए जाने वाले कच्चे माल और लोकप्रिय दिमाग से अपना खुद का विधिशास्त्र बनाना होगा। निश्चित रूप से, हम दूसरों के अनुभव से मदद प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार, जब तक हम एक सचेत रूप से रचनात्मक अवधि से गुजर रहे हैं, हमारे सिद्धांत कोहलर की तुलना में झेरिंग के अधिक होंगे। हमारे पास अभी भी "विधि के लिए संघर्ष" है, और एक परिपूर्ण कानूनी प्रणाली की सौम्य ऊंचाइयों से नीचे नहीं देख सकते हैं या तो उनके दोषों को ठीक करने के लिए या उनके गुणों को उदारता से आत्मसात करने के लिए। जब एक अमेरिकी न्यायविद "संवैधानिक विधि में यथार्थवाद" के लिए तर्क देता है तो वह उस आदमी के नक़्क़ेकदम पर चल रहा है जिसने पहली बार जर्मनी में अवधारणाओं के विधिशास्त्र की निंदा की और रोजमर्रा की जिंदगी के विधिशास्त्र को गौरवान्वित किया। हमारा सिद्धांत महान कोड बनाने की अवधियों की बजाय उनके उपयोग की अवधियों की बंदू आनी चाहिए। इस प्रकार टीकात्मक जर्मनी ईमानदारी से इस तथ्य से तर्क कर सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि लिखा नहीं गया है, कि यह विधि नहीं है। एंग्लो-अमेरिकन न्यायविदों के लिए, ऑस्टिन के प्रभाव के बावजूद, यह विधि है क्योंकि इतिहास ने इसे बनाया है, या यदि यह विधि नहीं है तो कम से कम यह उचित प्रतीत होगा कि हमें इसे अधिनियमित करना चाहिए - शायद राष्ट्र संघ के माध्यम से। किसी भी प्रणाली के तहत जनता की राय अंतर्राष्ट्रीय विधि के ग्रीटियन आधार, प्रकृति-विधि सिद्धांत से बहुत प्रभावित नहीं होगी; हालांकि फ्रांसीसी और इतालवी जनमत शायद होगा। शायद यह सामान्य इतिहास में लोकप्रिय विधिशास्त्र के दूरस्थ प्रभावों की खोज करना बहुत दूर जा रहा है, लेकिन जब विधि का इतिहास पूरी तरह से लिखा जाता है तो हम आत्मविश्वास से उम्मीद कर सकते हैं कि लोकप्रिय विधिशास्त्र को अन्य अधिक ठोस विकास के एक साथ के रूप में, यदि कारण और प्रभाव नहीं, तो अपना उचित स्थान दिया जाएगा। यह कम से कम कोई दुर्घटना नहीं है कि अमेरिकी बार का एक खंड अभी भी मेन और सेविगनी के पास स्कूल जा रहा है, जबकि एक अन्य खंड ज़ेक इम रेक्ट का रास्ता दिखाने का प्रयास कर रहा है।

- विधिशास्त्र का अप्रत्यक्ष शिक्षण

अमेरिकी बार "स्कूल जाना" अंतिम विचार का सुझाव देता है कि यह लोकप्रिय विधिशास्त्र आम तौर पर सचेत शिक्षण द्वारा प्रसारित नहीं किया जाता है। यह अदालत में मामले की तुलना में तरीके से अधिक पकड़ा जाता है, और कक्षा में इसकी कार्यप्रणाली में दिया जाता है। हमारी विधि

की अवधारणा के बीच एक स्पष्ट संबंध है, और अगली पीढ़ी तक इसे सौंपने का हमारा तरीका। इन्स ऑफ कोर्ट जबकि विधि एक दर्शन था, एक आत्मा जो साँस लेनी थी, या अपने भोजन के साथ निगल ली जानी थी, एक रहस्य जिसमें आरंभ किया जाना था, टूट गया जब ब्लैकस्टोन ने दिखाया कि यह सीखने के लिए सिद्धांतों की एक श्रृंखला थी। विश्वविद्यालय वर्ग कानूनी मठ की जगह लेने के लिए था। लेकिन क्या यह परिवर्तन प्रकार में एक प्रत्यावर्तन नहीं था? कोक, यह याद किया जाएगा, कि सामान्य विधि का अवतार इक्विटी के विरोध में, प्राचीन रीडिंग्स की प्रणाली के पतन पर विलाप किया, एक ऐसी प्रणाली जिसके तहत इन्स ऑफ कोर्ट व्यावहारिक रूप से सख्त विधि के विश्वविद्यालय थे। उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में रीडिंग्स का पुनरुद्धार और प्रणाली में अन्य परिवर्तन, जिसमें बार में प्रवेश के लिए परीक्षा की स्थापना (1827) शामिल है, सिद्धांत-स्कूल की विश्लेषणात्मक शाखा में एक झुकाव का प्रतिनिधित्व करते हैं, एकमात्र शाखा जिसमें कोई जीवन शेष था लॉर्ड एल्डन और उनके तत्काल पूर्ववर्तियों के तहत इक्विटी के क्रिस्टलीकरण के बाद। विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अगली दो पीढ़ियों के लिए विधि पढ़ाने के व्याख्यान और पाठ्यपुस्तक विधियों में अपनी अभिव्यक्ति पाता है। ब्लैकस्टोन के महान अनुकरणकर्ताओं के लिए विधि, चाहे उन्होंने इसे अपने अनावश्यक परिचयों में कैसे भी व्यक्त किया हो, सिद्धांतों का एक निकाय था, शायद सिद्धांतों का एक परिपूर्ण निकाय। हालांकि, यह चेतना कि ये सिद्धांत अपरिवर्तनीय नहीं थे, वकीलों पर मजबूर किया गया था (जब यह समझाना आवश्यक हो गया, उदाहरण के लिए, कि अंग्रेजी विधि का केवल इतना ही अमेरिकी स्थितियों के लिए लागू था जैसा कि इस देश में प्राप्त किया गया था, विश्लेषणात्मक प्रस्तुति बर्बाद होने की संभावना लग रही थी। सच है, शिक्षण की एक नई विधि तार्किक रूप से जितनी जल्दी हो सकती थी प्रतिस्थापित नहीं की गई थी, लेकिन अंततः विश्लेषणात्मक पाठ्यपुस्तकें और व्याख्यान मामलों के अध्ययन से पहले गुजर गए जो सभी को दर्शाता है कि ऐतिहासिक स्कूल के लिए क्या खड़ा है। और आज हमारे स्कूलों की मौन धारणा के खिलाफ रंबलिंग सुनाई दे रही है कि सामान्य विधि अदालतों से स्वतंत्र एक विकास है जो इसे लागू करता है या सरकारें जो इसे मंजूरी देती हैं। विधि और राज्य के संबंध की हमारी उपेक्षा, और वास्तव में, सभी कानून विधि हमेशा के लिए नहीं जा सकते हैं। डीन विगमोर के विधान में पाठ्यक्रम रचनात्मक स्कूल की प्रतिध्वनि हैं। क्या अगली पीढ़ी कोड से अंशों पर विचार करेगी, और क्या यह हर शब्द के निहितार्थ का अध्ययन करने में अपना समय बिताएगी, "एनसाइक्लोपीडी" के साथ रूपरेखा के रूप में इतिहास का उपयोग करके अंतराल को भरने के लिए, और व्याख्याशास्त्र के साथ पाठ्यक्रम की सामान्य सामग्री के रूप में - जैसा कि वे आज जर्मन विधि स्कूलों में करते हैं? कोई शायद ही सबसे अधिक रुढ़िवादी पेशे की आदतों में इतने अचानक परिवर्तनों की उम्मीद कर सकता है। फिर भी वैधानिक व्याख्या के अध्ययन की आवश्यकता पहले से ही यहां पूर्वाभास की गई है, और अन्य परिवर्तन अनुसरण करेंगे। लेकिन स्टेयर डेसिसिस और यह सब इसका मतलब शायद हम पर अपनी एक बड़ी पकड़ बनाए रखेगा। ऐसा लगता है कि हर कानूनी प्रणाली में विकास के साधनों में से एक दूसरों पर हावी होता है, हालांकि उनमें से किसी को बाहर नहीं करता है। क्या यह केवल दुर्घटना है, या नवशाविज्ञान न्यायविद हमें यहां मदद कर सकते हैं? टिप्पणीकरण यहूदी विधि पर इतना प्रभावित हुआ प्रतीत होता है कि इसकी विशिष्ट पाठ्यपुस्तक एक टीका पर एक टीका है, मार्जिनल टिप्पणीकरणों के साथ। रोमन-महाद्वीपीय विधि में संहिताकरण ने इस तरह की पूर्णता हासिल की कि इसने न्यायिक पूर्ववर्तियों के मूल्य को अस्पष्ट कर दिया है। इसकी विशिष्ट पाठ्यपुस्तक "संस्थानों" की मात्रा है। एंग्लो-अमेरिकन विधि में, टिप्पणी ने केस-ला को प्रमुख तत्व बना दिया प्रतीत होता है, यहां तक कि जबकि हमारी कानून, कोड, और संविधान ताजा और जोरदार हैं।

निष्कर्ष में: विधिशास्त्र के प्रत्येक स्कूल के लिए विशेष विधि के संबंध में एक जगह है जिसमें से यह बढ़ता है, जैसे प्रत्येक व्याकरण उस भाषा के लिए फिट है जो वह वर्णन करता है। शायद व्याकरण और विधिशास्त्र में स्थायी और सार्वभौमिक तत्व हैं - यदि मानव प्रकृति में कोई स्थायी और सार्वभौमिक लक्षण हैं - लेकिन यह जर्मन विधिशास्त्र के साथ अंग्रेजी विधि को पढ़ाने के लिए उतना ही असंतोषजनक है जितना कि जर्मन व्याकरण के साथ अंग्रेजी भाषा को पढ़ाना। न ही हमें पिछले युग के विधिशास्त्र की निंदा करनी चाहिए जो हमारी वर्तमान समस्याओं को पूरा करने में विफल रहता है, किसी भी अधिक से अधिक हमें चौसर के दिन के व्याकरण में डबल नकारात्मक की निंदा करनी चाहिए। वर्तमान में इस देश में हमारी समस्याओं को कोडिफिकेशन से पहले विधान के अंतिम डैश से करना है जो हमारी हड्डियों में बस जाता है। आधुनिक अमेरिकी जीवन का विधिशास्त्र अभी तक नहीं लिखा गया है, फिर भी पर्याप्त कहा और किया गया है यह दिखाने के लिए कि हमारे दिन की जरूरतों का प्रतिनिधित्व करने के लिए इसे विधि के साथ इस तरह से निपटना चाहिए जो सामाजिक परिवर्तनों और खोजों के लिए न्याय करेगा जो इसके तुरंत पीछे हैं। लेकिन आज के लिए रचनात्मक स्कूल के समाजशास्त्रीय न्यायविद के कार्यक्रम को स्वीकार करने में, हम अतीत और भविष्य की प्रणालियों से "क्रॉस धाराओं" के लिए अपनी आंखें बंद नहीं करते हैं, जो हमें विचारों की अत्याचार से बचाती हैं। आज अमेरिका में एक स्कूल की प्रबलता को स्वीकार करते हुए, हम न तो अतीत में इसकी अनुपस्थिति पर खेद व्यक्त करते हैं और न ही यहां या विदेशों में अनुकरण की इसकी निरंतर सहनशक्ति की भविष्यवाणी करते हैं। क्या हम विधिशास्त्र की सापेक्षता के सिद्धांत को स्वीकार नहीं कर सकते हैं? यह दुर्भाग्य से सच है कि विधिशास्त्र पर अधिकांश लेखक जो अतीत की प्रणालियों की समीक्षा में गुजरते हैं, केवल यह दिखाने के लिए ऐसा करते हैं कि उन्हें बदनाम किया गया है।

जर्मनी में रहने वाले सबसे बड़े न्यायविद सापेक्षता के सिद्धांत का प्रचार करते समय जैसा कि कानूनों पर लागू होता है, यहां तक कि दासता को उचित ठहराने की हद तक, विधिशास्त्र की सापेक्षता की मान्यता से इतना दूर है कि वह अपने कुछ पूर्ववर्तियों के लिए शरमाता है, और पूछता है कि दूसरों को दफनाया और भुला दिया जाए क्योंकि वे अपने सिद्धांतों को मूर्त रूप देने में विफल रहते हैं। सबसे अच्छा उनकी उपस्थिति "आवश्यक बीमारी" के रूप में सहन की जानी है या, जैसा कि उनके एक समकालीन कहेंगे, कम या ज्यादा उपयोगी "भ्रम" के प्रचार के लिए। लेकिन इस देश में यह आशा है कि नए आंदोलनों के नायक - इतिहास के स्कूल में

अच्छी तरह से प्रशिक्षित, और तैयार - शायद हर विदेशी प्रणाली को एक कान उधार देने के लिए बहुत इच्छुक - सापेक्षता के सुझाव पर आपत्ति नहीं करेंगे, क्योंकि उन्होंने अक्सर देखा होगा कि विधिशास्त्र का विधि के साथ-साथ एक सतत इतिहास है। उन्होंने सीखा है कि "हर आदमी अपनी उम्र का बच्चा है" और न्यायविद् पुरुष हैं।

**नाथन आइज़ैक्स**  
सिनसिनाटी लॉ स्कूल



## चतुर्थ तिमाही 2025 (अक्टूबर से दिसंबर) के ए.एफ.आर. निर्णयों की सूची

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
1	APPLICATION U/s 482	10676	2025	Lucknow	Vivek Singh Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Home Lko. And Another	19/12/2025
2	CRIMINAL APPEAL	1992	1984	Allahabad	Arbind Singh And Another Vs. State Of U.P.	19/12/2025
3	CRIMINAL APPEAL	2193	1984	Allahabad	Gaya Prasad And Others Vs. State Of U.P.	19/12/2025
4	CRIMINAL APPEAL	914	1985	Allahabad	Bankey And Others Vs. State Of U.P.	19/12/2025
5	CRIMINAL APPEAL	2634	1987	Allahabad	Narendra And Others Vs. State Of U.P.	19/12/2025
6	CRIMINAL APPEAL	1149	1991	Allahabad	Smt. Omwati And 02 Others Vs. State	19/12/2025
7	CRIMINAL APPEAL	435	1998	Lucknow	Vinai Kumar Sharma Vs. Union Of India	19/12/2025
8	CRIMINAL APPEAL	5162	2007	Allahabad	Azad Khan Vs. State Of U.P.	19/12/2025
9	CRIMINAL APPEAL	1345	2015	Allahabad	Kale Vs. State Of U.P.	19/12/2025
10	CRIMINAL APPEAL	11855	2025	Allahabad	Maloo Vs. State of U.P. and Another	19/12/2025
11	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	27966	2025	Allahabad	Birendra Lal Verma And 4 Others Vs. State Of U.P. And 3 Others	19/12/2025
12	CRIMINAL REVISION	4925	2024	Allahabad	Hamid and 2 others Vs. State of U.P. and another	19/12/2025
13	FIRST APPEAL DEFECTIVE	161	2025	Lucknow	State Of U.P. Thru. Collector Lko. And Another Vs. Jurakhan	19/12/2025
14	APPLICATION U/S 528 BNSS	35164	2025	Allahabad	Sanjay Agarwal Vs. State Of U.P. And 3 Others	19/12/2025
15	WRIT - A	6734	2002	Lucknow	Mohd.Arif Vs. U.P.State Road Transport Corp. Through Its M.D.And 4 Ors	19/12/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
16	WRIT - A	13255	2025	Lucknow	Shubham Bhargava Vs. Union Of India Thru. Ministry Of Finance Deptt. Financing Services New Delhi And 4 Others	19/12/2025
17	WRIT - A	15202	2025	Lucknow	Mohar Singh Kushwaha Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Food Safety And Drug Administration Lko. And Another	19/12/2025
18	WRIT - C	20970	2018	Allahabad	Shri. Manjeet Chawla Vs. State Of U P And 2 Others	19/12/2025
19	WRIT - C	26271	2025	Allahabad	Vision Town Planners Private Limited Vs. State Of U.P. And 2 Others	19/12/2025
20	WRIT - C	41243	2025	Allahabad	Gangaram Mishra Vs. State Of U.P. And 6 Others	19/12/2025
21	WRIT TAX	2707	2025	Allahabad	M/S Bambino Agro Industries Ltd Vs. State Of Uttar Pradesh And Another	19/12/2025
22	CRIMINAL APPEAL	1071	1987	Allahabad	Lala And Another Vs. State	18/12/2025
23	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	15414	2025	Allahabad	Queency Bhasin Vs. State of U.P. and Another	18/12/2025
24	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	4791	2025	Lucknow	Rajesh Singh Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. Home Lko. And Others	18/12/2025
25	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	6047	2025	Lucknow	Rajesh Singh Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. Home Lko. And Others	18/12/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
26	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	9232	2025	Allahabad	Satinder Singh Bhasin Vs. State Of U.P. And Another	18/12/2025
27	CRIMINAL REVISION	2607	2025	Allahabad	Satyaprakash Rai Alias Dablu Rai And Another Vs. State of U.P. and Another	18/12/2025
28	SPECIAL APPEAL	1236	2019	Allahabad	Satya Prakash Yadav And 2 Others Vs. State Of U.P. And 3 Others	18/12/2025
29	SPECIAL APPEAL DEFECTIVE	656	2023	Allahabad	C/M Dr. Rajendra Prasad Inter College And Another Vs. Shambhu Rao And 3 Others	18/12/2025
30	WRIT - C	29414	2021	Allahabad	Smt. Gayatri Devi Vs. State Of U P And 4 Others	18/12/2025
31	WRIT - C	22383	2025	Allahabad	M/S Kci Ltd Formerly M/S Khemka Containers Ltd Vs. State Of U.P. And 3 Others	18/12/2025
32	WRIT - C	35470	2025	Allahabad	Meena Devi Vs. State Of U.P. And 5 Others	18/12/2025
33	APPEAL UNDER SECTION 37 OF ARBITRATION AND CONCILIATION ACT 1996	289	2025	Allahabad	Banaras Hindu University, Varanasi Through Its Registrar Vs. M/S Umang Cure Pvt. Ltd. And 3 Others	17/12/2025
34	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	43604	2025	Allahabad	Rihan Vs. State of U.P.	17/12/2025
35	SPECIAL APPEAL	530	2025	Allahabad	Singasan Sharma Vs. State Of Up And 3 Others	17/12/2025
36	WRIT - B	3195	2025	Allahabad	Abhinav Singh Vs. Board Of Revenue U.P. And 5 Others	17/12/2025
37	WRIT - C	3000129	2002	Lucknow	Ram Ygya Vs. Addl. Commissioner J Faizabad And Others 3	17/12/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
38	WRIT - C	11844	2025	Lucknow	Rohit Agarwal Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. Revenue Deptt., Lko. And Others	17/12/2025
39	WRIT - C	35171	2025	Allahabad	Akanksha And Another Vs. State Of U.P. And 3 Others	17/12/2025
40	WRIT - C	41697	2025	Allahabad	Dhanraj Singh Vs. State Of U.P. And 8 Others	17/12/2025
41	MATTERS UNDER ARTICLE 227	626	2024	Allahabad	Canara Bank Branch Office And 1 Other Vs. Sri Ashok Kumar @ Heera Singh	16/12/2025
42	APPLICATION U/s 482	40092	2024	Allahabad	Pawan Kumar Singh And 3 Others Vs. State Of U.P. And Another	16/12/2025
43	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	34143	2025	Allahabad	Vikas Kumar Vs. State Of U.P. Through Principal Secretary Revenue Government Of U.P. At Lucknow	16/12/2025
44	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	41370	2025	Allahabad	Teekam Vs. State of U.P.	16/12/2025
45	CIVIL REVISION	57	2025	Lucknow	District Deputy Election Officer/ A.D.M., Finance And Revenue, Lakhimpur Kheri And Anr. Vs. Punjab Tent House Thru. Prop. And Anr.	16/12/2025
46	FIRST APPEAL	1276	2023	Allahabad	Rakesh Srivastava And 14 Others Vs. Smt. Sudha Srivasata (Since Deceased) And 10 Others	16/12/2025
47	SPECIAL APPEAL	394	2025	Lucknow	Shri Colonizers And Developers Pvt. Ltd. Thru. Director And Another Vs. Abha Gupta	16/12/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
48	PUBLIC INTEREST LITIGATION (PIL)	10701	2017	Lucknow	Sanjay Sharma Vs. Union Of India Thru Secretary Of Ministry personnel And Ors.	16/12/2025
49	WRIT - A	19080	2006	Allahabad	Rajesh Singh Vs. Board Of Governors Motilal Nehru N. Institute Of Tech. And Anr	16/12/2025
50	WRIT - A	8734	2025	Allahabad	Awadhesh Kumar Chaudhary And 6 Others Vs. State Of U.P. And 3 Others	16/12/2025
51	WRIT - C	1647	2025	Lucknow	Centre For Management Technology, Gautam Buddha Nagar Thru. Director Krishna Mohan Pandey Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Deptt. Of Social Welfare, Lko. And 4 Others	16/12/2025
52	CIVIL MISC REVIEW APPLICATION DEFECTIVE	99	2025	Allahabad	State Of Up And Another Vs. Mohan Lal	15/12/2025
53	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	19091	2025	Allahabad	Nitin Kumar Singh @ Nitin Kumar Vs. State Of Up And 4 Others	15/12/2025
54	APPLICATION U/S 528 BNSS	1627	2025	Lucknow	Mohd. Haroon Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. /Prin. Secy. Home And 2 Others	15/12/2025
55	SPECIAL APPEAL	1233	2025	Allahabad	The State Of Up And 3 Others Vs. Vinay And 3 Others	15/12/2025
56	WRIT - A	14162	2025	Lucknow	Amrendra Kumar Singh Vs. U.P. Rajkiya Nirman Nigam Ltd. Thru. Managing Director	15/12/2025
57	WRIT - C	42054	2025	Allahabad	Faaiz Qamar Vs. State Of U.P. And 3 Others	15/12/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
58	WRIT - C	43026	2025	Allahabad	Mohammad Khalid Ameer Vs. State Of U.P. And 9 Others	15/12/2025
59	APPLICATION U/s 482	39225	2024	Allahabad	Mujeeb Ahmad Vs. State of U.P. and Another	12/12/2025
60	APPEAL UNDER SECTION 37 OF ARBITRATION AND CONCILIATION ACT 1996	75	2024	Lucknow	M/S Regenvo Mobile Private Limited Lucknow Thru Its Director Rahul Singh And Anr. Vs. M/S Siyogi Enterprises Thru Managing Director And Others	12/12/2025
61	CRIMINAL APPEAL	1701	2004	Lucknow	Phool Chandra And 2 Ors. Vs. State Of U.P.	12/12/2025
62	CRIMINAL APPEAL	967	2012	Lucknow	Paras Nath Sahu And Another Vs. State Of U.P.	12/12/2025
63	APPLICATION U/S 528 BNSS	43373	2025	Allahabad	Kamran Vs. State of U.P. and Another	12/12/2025
64	WRIT - A	13771	2025	Lucknow	C/M, Ram Bharose Maiku Lal Inter College Lko. Thru. Its Manager Srikant Sahu And Another Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. Secondary Edu. Deptt. Lko And 5 Others	12/12/2025
65	WRIT - A	17615	2025	Allahabad	Km. Dimple Singh And 12 Others Vs. State Of Uttar Pradesh And 3 Others	12/12/2025
66	WRIT TAX	5865	2025	Allahabad	M/S Prakash Medical Stores Vs. Union Of India And 3 Others	12/12/2025
67	CRIMINAL REVISION	6594	2025	Allahabad	Sanjay Singh And 2 Others Vs. State Of Up And 2 Others	11/12/2025
68	GOVERNMENT APPEAL	2576	1985	Allahabad	State Of U.P. Vs. S. Vijai Singh	11/12/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
69	CRIMINAL APPEAL U/S 413 BNSS	638	2025	Allahabad	Bhoopram Vs. State Of U.P. And 4 Others	11/12/2025
70	SPECIAL APPEAL DEFECTIVE	387	2025	Lucknow	Vinay Mohan Vs. Smt. Nidhi Singh And Anr.	11/12/2025
71	WRIT - B	940	2018	Lucknow	Smt. Madhuri Devi Vs. Additional Collector Judicial Barabanki And Ors.	11/12/2025
72	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	32689	2025	Allahabad	Amit Tripathi Alias Mukund Vs. State of U.P.	10/12/2025
73	CRIMINAL APPEAL	3108	2025	Lucknow	Shivam Sharma Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Home Lko And Another	10/12/2025
74	JAIL APPEAL	60	2020	Allahabad	Raj Kumar Vs. State Of U.P.	10/12/2025
75	SECOND APPEAL	1436	1983	Allahabad	Ram Chandra And Others Vs. Rajendra	10/12/2025
76	SPECIAL APPEAL	431	2025	Lucknow	Ashish Yadav Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Deptt. Of Panchayati Raj Lko. And 4 Others	10/12/2025
77	TRANSFER APPLICATION (CIVIL)	225	2025	Lucknow	Nagendra Sharma And Another Vs. The State Of U.P. Through Principal Secretary Home Civil Secretariat Lucknow And Another	10/12/2025
78	TRANSFER APPLICATION (CIVIL)	993	2025	Allahabad	Lalchand Vs. Virendra Shankar And 6 Other	10/12/2025
79	WRIT - A	17776	2025	Allahabad	Deepak Kumar Vs. State Of Uttar Pradesh And 2 Others	10/12/2025
80	WRIT - A	18653	2025	Allahabad	Chandani Shekh Vs. State Of U.P. And 2 Others	10/12/2025
81	CRIMINAL APPEAL	618	1990	Allahabad	Rahishe @Rahise And Others Vs. State Of U.P.	9/12/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
82	CRIMINAL REVISION	6131	2023	Allahabad	Nahni And 5 Others Vs. State of U.P. and Another	9/12/2025
83	WRIT - A	14077	2025	Lucknow	Dr. Vijay Bahadur Jaiswal And Another Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Agriculture Edu. And Research Lko. And 5 Other	9/12/2025
84	WRIT - B	15591	2016	Allahabad	Ram Gopal And 7 Others Vs. Smt. Parvati And 3 Others	9/12/2025
85	WRIT - C	4177	2024	Lucknow	Rakesh Kumar Shukla Vs. Lucknow Development Authority Thru. Its Chairman , Lko. And Others	9/12/2025
86	APPLICATION U/s 482	33209	2023	Allahabad	Gaurav Mehta Vs. State Of U.P. And Another	8/12/2025
87	CRIMINAL APPEAL	1150	1988	Allahabad	Trilok Ram And Another Vs. State	8/12/2025
88	FIRST APPEAL FROM ORDER	151	2014	Allahabad	Km. Anchal Jain Vs. Sahkari Ganna Union And 2 Ors.	8/12/2025
89	WRIT - A	18036	2025	Allahabad	Aditya Kumar And Another Vs. State Of Uttar Pradesh And 3 Others	8/12/2025
90	CRIMINAL APPEAL	1529	1989	Allahabad	Bhola Vs. State	5/12/2025
91	CRIMINAL APPEAL	2157	1989	Allahabad	Ram Bharosey Vs. State	5/12/2025
92	CRIMINAL APPEAL	4117	2019	Allahabad	Ram Brijesh Vs. State Of U.P.	5/12/2025
93	HABEAS CORPUS WRIT PETITION	565	2025	Allahabad	Smt. Guddi Devi And Another Vs. State Of U.P. And 3 Others	5/12/2025
94	HABEAS CORPUS WRIT PETITION	572	2025	Allahabad	Smt Rohini And Another Vs. State Of U.P. And 4 Others	5/12/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
95	CRIMINAL MISC. ANTICIPATORY BAIL APPLICATION U/S 482 BNSS	687	2025	Lucknow	Neha Singh Rathore @ Neha Kumari Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Home Deptt. Lko And Another	5/12/2025
96	WRIT - A	1020	2006	Lucknow	Prabhu Nath Yadav Vs. Union Of India Through Secretary Ministry Of Home Affairs	5/12/2025
97	WRIT - A	11186	2022	Allahabad	Ram Swarup Rajput And 2 Others Vs. Union Of India And 2 Others	5/12/2025
98	WRIT - A	17540	2025	Allahabad	Ashok Kumar Vs. State Of U.P. And 3 Others	5/12/2025
99	WRIT - C	39066	2025	Allahabad	Sant Harvindar Singh Vs. State Of U.P. And 3 Others	5/12/2025
100	WRIT - A	14000	2025	Lucknow	C/M , Chutki Bhandar Girls Inter College , Lko Thru. Its Manager Pawan Verma And Another Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. Secondary Edu. Deptt. Lko And 5 Others	4/12/2025
101	WRIT - C	11593	2025	Lucknow	Ashok Pandey Vs. Sri Rahul Gandhi And 3 Others	4/12/2025
102	APPLICATION U/s 482	22266	2024	Allahabad	Vishwa Bandhu Vs. State Of U.P. And 3 Others	3/12/2025
103	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	20055	2025	Allahabad	Manoj Kumar Niranjana Vs. State Of U.P. And 3 Others	3/12/2025
104	CRIMINAL REVISION	2487	2024	Allahabad	Ankit Saha Vs. State of U.P. and Another	3/12/2025
105	CRIMINAL APPEAL U/S 413 BNSS	560	2025	Allahabad	Mewati Devi Vs. State Of U.P. And 8 Others	3/12/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
106	WRIT - C	1005010	2006	Lucknow	Central Institute Of Medicinal And Aromatic Plants And Ors. Vs. Sri Rishi Dev Mishra And Other	3/12/2025
107	WRIT - C	19818	2017	Lucknow	Smt Raziya Kahtoon Vs. State Of U.P Thru Prin Secy Stamp And Registration Lko And Ors	3/12/2025
108	WRIT - C	11631	2025	Lucknow	Omkar Gupta Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Deptt. Of Urban Deve. Lko And 3 Others	3/12/2025
109	MATTERS UNDER ARTICLE 227	6938	2025	Lucknow	Parshuram And Another Vs. Sub Divisional Magistrate, Utraula, Balrampur And Others	2/12/2025
110	WRIT - A	14242	2025	Allahabad	Indra Devi Vs. State Of U.P. And 2 Others	2/12/2025
111	WRIT - C	1001378	2000	Lucknow	Ram Kumar Vs. Narain And Others	2/12/2025
112	WRIT - C	42275	2025	Allahabad	Mukesh Jain Vs. State Of U.P. And 4 Others	2/12/2025
113	WRIT - C	8939	2025	Lucknow	M/S Sahu Land Developers Pvt. Ltd. Thru. Authorized Signatory Mr. Sanjay Srivastava Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Revenue Lko And 6 Others	2/12/2025
114	APPLICATION U/s 482	18737	2023	Allahabad	Parvez Khan Vs. State Of U.P. And Another	1/12/2025
115	CRIMINAL APPEAL	2849	1987	Allahabad	Virendra Vs. State Of U.P.	1/12/2025
116	CRIMINAL APPEAL U/S 413 BNSS	609	2025	Allahabad	Satyapal Vs. State Of U.P. And 3 Others	1/12/2025
117	WRIT - A	16556	2024	Allahabad	Manoj Kumar Mishra Vs. State Of Up And Another	1/12/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
118	WRIT - C	23888	2024	Allahabad	Ashish Kumar Agarwal Vs. Indian Oil Corporation Limited And 2 Others	1/12/2025
119	APPLICATION U/s 482	19617	2013	Allahabad	Daya Shankar Mishra @ Dayalu Mishra Vs. State Of U.P. And Another	28/11/2025
120	CONTEMPT APPLICATION (CIVIL)	2555	2017	Allahabad	Vinay Kumar Singh Vs. Suresh Chandra Princ. Secy.Irrigation Deptt. And 4 Ors.	28/11/2025
121	CRIMINAL APPEAL	502	1984	Allahabad	Virendra Kumar Goel Vs. State of U.P.	28/11/2025
122	CRIMINAL APPEAL	2105	1986	Allahabad	Nizamuddin @ Bhindi Vs. State Of U.P.	28/11/2025
123	FIRST APPEAL	493	2025	Allahabad	Rajdhari And Another Vs. Sadhna Devi	28/11/2025
124	WRIT - A	16997	2025	Allahabad	Dr. Padmakar Mishra Vs. State Of U.P. And 4 Others	28/11/2025
125	WRIT - C	28215	2025	Allahabad	Suryadev Pathak Vs. Union Of India And 4 Others	28/11/2025
126	APPLICATION U/s 482	9706	2025	Lucknow	Shri Kamal Agrawal (M.D.) Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Home Deptt. Lko. And Another	27/11/2025
127	CRIMINAL APPEAL	2259	2017	Lucknow	Jitendra Pal Vs. State Of U.P.	27/11/2025
128	CRIMINAL APPEAL	682	2020	Allahabad	Gauru @ Gaurav Vs. State Of U.P.	27/11/2025
129	FIRST APPEAL FROM ORDER	1999	2012	Allahabad	New India Assurance Co. Ltd. Vs. Shabbir Ahmed And Others	27/11/2025
130	WRIT - C	29280	2022	Allahabad	Smt. Raj Kumari Vs. State Of U.P. And 3 Others	27/11/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
131	WRIT - C	38410	2025	Allahabad	Mahaveer Singh Vs. State Of Up And 27 Others	27/11/2025
132	WRIT TAX	1270	2025	Lucknow	Anand Kumar Verma Vs. Prin. Commissioner Of Income Tax Allahabad And 2 Others	27/11/2025
133	CRIMINAL APPEAL	7008	2011	Allahabad	Jaini Singh And Others Vs. State Of U.P.	26/11/2025
134	CRIMINAL REVISION	6244	2025	Allahabad	X Vs. State of U.P. and Another	26/11/2025
135	FIRST APPEAL FROM ORDER	3816	2017	Allahabad	Manager The Oriental Insurance Co. Ltd. Vs. Smt. Kusma Devi And 6 Others	26/11/2025
136	GOVERNMENT APPEAL	71	1988	Allahabad	State of U.P. Vs. Ram Raksh Pal And Others	26/11/2025
137	APPLICATION U/S 528 BNSS	1624	2025	Allahabad	Prempal And 3 Others Vs. State Of U.P. And Another	26/11/2025
138	APPEAL UNDER SECTION 37 OF ARBITRATION AND CONCILIATION ACT 1996	42	2025	Lucknow	National Highways Authority Of India, Through Its Project Director Vs. Om Prakash Singh And 2 Others	25/11/2025
139	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	41437	2025	Allahabad	Pankaj Vs. State of U.P.	25/11/2025
140	CRIMINAL REVISION	6771	2024	Allahabad	Rameshavar Dayal Vs. State Of U.P. And 3 Others	25/11/2025
141	CRIMINAL REVISION	1956	2025	Allahabad	Padmakar Upadhyay Vs. State Of U.P. And 5 Others	25/11/2025
142	FIRST APPEAL	819	2025	Allahabad	Smt. Noushad Begam Vs. Punjab National Bank And 4 Others	25/11/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
143	FIRST APPEAL	916	2025	Allahabad	Smt. Gunjan Agrawal Vs. Ashish Kumar Gautam And Another	25/11/2025
144	SPECIAL APPEAL DEFECTIVE	459	2025	Lucknow	Tulsiani Constructions And Developers Pvt. Ltd. Thru. Its Auth. Signatory Sri Ravi Tiwari Vs. State Of U.P. Thru. Its Prin. Secy. Deptt. Of Home Lko. And 2 Others	25/11/2025
145	WRIT - B	4503	2018	Allahabad	Nagar Panchayat Akbarpur Vs. Member Board Of Revenue U.P. And 6 Others	25/11/2025
146	WRIT - C	27322	2025	Allahabad	Conwood Medipharma Private Limited Vs. State Of U.P. And 2 Others	25/11/2025
147	APPEAL UNDER SECTION 37 OF ARBITRATION AND CONCILIATION ACT 1996	255	2025	Allahabad	The Government Of U.P. Vs. M/S Krishna Mohan Goel, Contractor	24/11/2025
148	CRIMINAL APPEAL	1434	2016	Lucknow	Raju Batham Vs. State Of U.P.	24/11/2025
149	CRIMINAL APPEAL	2516	2022	Allahabad	Kamlesh Tiwari And 2 Others Vs. State Of U.P.	24/11/2025
150	CRIMINAL APPEAL U/S 413 BNSS	666	2025	Allahabad	Smt Indrawati Devi Vs. State Of U.P. And 6 Others	24/11/2025
151	SPECIAL APPEAL	952	2025	Allahabad	The State Of Up And 4 Others Vs. Dharendra Singh Yadav, Police Inspector	24/11/2025
152	WRIT - A	493	2024	Lucknow	Shanu Kumar (Adopted Son) Vs. The Nagar Ayukt Municipal (Commissioner) Nagar Nigam Lko. And 2 Others	24/11/2025
153	WRIT - C	6510	2024	Allahabad	Neeta Mishra Vs. State Of Up And 3 Others	24/11/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
154	APPLICATION U/s 482	41457	2024	Allahabad	Jitendra Sahani Vs. State Of U.P. And Another	21/11/2025
155	CRIMINAL APPEAL	1669	1996	Allahabad	Ashok Kumar And Another Vs. State Of U.P.	21/11/2025
156	CRIMINAL REVISION	3271	2021	Allahabad	Ramraj Patel Vs. State of U.P. and Another	21/11/2025
157	CRIMINAL REVISION	1202	2025	Allahabad	Satyam Sharma Vs. State Of U.P. And 3 Others	21/11/2025
158	CRIMINAL REVISION	814	2025	Allahabad	Chandraprakash Yadav And 6 Others Vs. State of U.P. and Another	21/11/2025
159	APPLICATION U/S 528 BNSS	37031	2025	Allahabad	Ashwani Anand Vs. State of U.P. and 3 others	21/11/2025
160	SECOND APPEAL	2800	1980	Allahabad	Sheikh Mohd. Murtuza Vs. Sheikh Wajid Ali	21/11/2025
161	WRIT - A	8442	2025	Lucknow	C/M , Chutki Bhandar Girls Inter College , Lko Thru. Its Manager Pawan Verma And Another Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. Secondary Edu. Deptt. Lko And 6 Others	21/11/2025
162	WRIT - C	37032	2019	Allahabad	Smt. Shahin Begum And 9 Others Vs. State Of U.P. And 5 Others	21/11/2025
163	WRIT - C	10629	2025	Lucknow	Mamta Upadhyay And 2 Others Vs. State Of U.P. Thru. Its Addl. Chief / Prin. Secy. Stamp And Registration Lko. And 3 Others	21/11/2025
164	MATTERS UNDER ARTICLE 227	9397	2025	Allahabad	Chirag Aashiana Pvt. Ltd.A-4 Vs. Smt. Santosh And Another	20/11/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
165	APPLICATION U/s 482	2778	2018	Lucknow	Sanehi @ Ram Sanehi Vs. State of U.P. and Another	20/11/2025
166	CIVIL REVISION	77	2025	Allahabad	Deepak Prasad (Deceased) And 2 Others Vs. Ajay Prasad	20/11/2025
167	APPLICATION U/S 528 BNSS	34844	2025	Allahabad	Wasiullah And 2 Others Vs. State Of U.P. And 3 Others	20/11/2025
168	WRIT - B	1981	1983	Allahabad	Faiz Mohd. Vs. B.R. and others	20/11/2025
169	WRIT - C	1351	2021	Allahabad	Arvind Rai Vs. State Of U.P. And 2 Others	20/11/2025
170	WRIT - C	13413	2024	Allahabad	Hawaldar Yadav Vs. State Of Up And 8 Others	20/11/2025
171	APPLICATION U/s 482	8902	2025	Lucknow	Sonali Verma And Another Vs. State Of U.P. Thru. Its Addl. Chief Secy./Prin. Secy. Deptt. Of Home Lko. And 2 Others	19/11/2025
172	APPLICATION U/s 482	8942	2025	Lucknow	Sonali Verma And Another Vs. State Of U.P. Thru. Its Addl. Chief Secy. Deptt. Of Home Lko. And 2 Others	19/11/2025
173	CRIMINAL REVISION	264	2025	Allahabad	Ajay Mohan Pathak Vs. State of U.P. and Another	19/11/2025
174	WRIT - A	15283	2019	Allahabad	Umesh Kumar Vs. State Of U P And 5 Others	19/11/2025
175	WRIT - A	7520	2025	Allahabad	Nitish Maurya And 4 Others Vs. State Of U.P. And 4 Others	19/11/2025
176	WRIT - C	3000108	2002	Lucknow	State Of U.P. Thru Collector Shrawasti Vs. Anwar Alam And Others	19/11/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
177	WRIT - C	21944	2022	Allahabad	Yogendra Prasad Vs. State Of U.P. And 4 Others	19/11/2025
178	CAPITAL CASES	4	2021	Lucknow	State Of U.P. Vs. Prem-chandra @ Pappu Dixit	18/11/2025
179	CRIMINAL APPEAL	1626	2021	Lucknow	Prem Chand @ Pappu Dixit Vs. State Of U.P. And Anr.	18/11/2025
180	CRIMINAL REVISION	1576	2020	Allahabad	Ankita Singh Vs. State of U.P. and Another	18/11/2025
181	FIRST APPEAL	623	2019	Allahabad	Subodh Kumar Agarwal Vs. Sri Manoj Kumar Agarwal	18/11/2025
182	FIRST APPEAL DEFECTIVE	541	2025	Allahabad	Avdshesh Kumar Vs. Smt. Dhruvi Chandra	18/11/2025
183	SPECIAL APPEAL	384	2025	Lucknow	Union Of India Thru. Secy. Ministry Home Affairs C.G.O. Complex New Delhi And 4 Others Vs. Vijay Kumar Pandey	18/11/2025
184	WRIT - A	29618	2014	Allahabad	Girdhari Tiwari Vs. State Of U.P. And 3 Others	18/11/2025
185	WRIT - C	1004000	2006	Lucknow	Ram Khelawan Vs. State Of U.P. Through Secy. Revenue Lucknow And Others	18/11/2025
186	MATTERS UNDER ARTICLE 227	11338	2025	Allahabad	Ashok Raghav Vs. Shri Krishna Janam Sewa Sansthan	17/11/2025
187	APPLICATION U/s 482	39247	2018	Allahabad	Mubarak And 6 Ors Vs. State Of U.P. And Anr	17/11/2025
188	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	9586	2025	Lucknow	Subhash Chandra Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. Deptt. Of Vigilance Lko. And Others	17/11/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
189	CRIMINAL REVISION	4542	2024	Allahabad	Shailesh Kumar Yadav Vs. State of U.P. and Another	17/11/2025
190	HABEAS CORPUS WRIT PETITION	714	2025	Allahabad	Shoaib (Corpus) Vs. State Of U.P. And 2 Others	17/11/2025
191	CRIMINAL MISC. APPLICATION U/S 419 BNSS	230	2025	Allahabad	Sanjay Kumar Vs. State Of U.P. And 3 Others	17/11/2025
192	WRIT - A	10843	2025	Allahabad	Deepa Magleena Vs. State Of Uttar Pradesh And 4 Others	17/11/2025
193	WRIT - C	10032	2022	Allahabad	M/S Maha Shakti Traders And Another Vs. State Of U.P. And 5 Others	17/11/2025
194	WRIT - C	21627	2023	Allahabad	Nem Kumar Jain And Another Vs. Union Of India And 2 Others	17/11/2025
195	CRIMINAL APPEAL	855	2016	Lucknow	Smt. Kamini Verma Vs. State Of U.P.	15/11/2025
196	FIRST APPEAL FROM ORDER	2987	2007	Allahabad	Oriental Insurance Co Ltd Vs. Sirajulhasan And Ors	15/11/2025
197	FIRST APPEAL FROM ORDER	2680	2025	Allahabad	The New India Assurance Company Limited Vs. Mukesh Agrawal And 3 Others	15/11/2025
198	WRIT - A	2878	2004	Lucknow	Archana Gautam Vs. State Of U.P. Through Secy. Basic Education Civil Sectt. Lko.	15/11/2025
199	WRIT - A	16734	2012	Allahabad	Dr. S.K. Pant professor And Others Vs. Union Of India And Others	15/11/2025
200	WRIT - A	19787	2022	Allahabad	Sana Khan Vs. State Of U.P. And 2 Others	15/11/2025
201	WRIT - A	10655	2024	Allahabad	Gobinddas And Another Vs. State Of Up And 3 Others	15/11/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
202	WRIT - A	20558	2024	Allahabad	Deepak Chowrasia Vs. State Of U.P. And 4 Others	15/11/2025
203	WRIT - C	1003822	2002	Lucknow	Sadhu Saran Chaubey Vs. Addl. Commissioner Devi Patan Mandal And 4 Ors.	15/11/2025
204	WRIT - C	10995	2025	Lucknow	Anupam Kumar Mishra Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. Deptt. Of Revenue, Lko. And Others	15/11/2025
205	MATTERS UNDER ARTICLE 227	12830	2025	Allahabad	Anil Kumar Vs. Ramraj And 8 Others	14/11/2025
206	APPLICATION U/s 482	7745	2016	Allahabad	Manth Lal And Another Vs. State of U.P. and Another	14/11/2025
207	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	37772	2025	Allahabad	Farman Vs. State of U.P.	14/11/2025
208	CRIMINAL APPEAL	1153	2001	Lucknow	Vishunath And Another. Vs. State of U.P.	14/11/2025
209	CRIMINAL APPEAL	1459	2004	Lucknow	Ram Sajeewan And Ors. Vs. State Of U.P.	14/11/2025
210	WRIT - A	24393	2016	Allahabad	Dr. Ankit Sarin Vs. Union Of India And 3 Others	14/11/2025
211	WRIT - C	7293	2025	Allahabad	Mohammad Aqib Vs. Union Of India And 7 Others	14/11/2025
212	MATTERS UNDER ARTICLE 227	10979	2023	Allahabad	Ghanshyam And 25 Others Vs. Tulsi And 24 Others	13/11/2025
213	MATTERS UNDER ARTICLE 227	16070	2024	Allahabad	Ravi Pratap Singh And 4 Others Vs. Prahlad Singh And 2 Others	13/11/2025
214	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	39623	2025	Allahabad	Ravi Kumar Saroj Vs. State Of U.P. And 3 Others	13/11/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
215	CIVIL REVISION	12	2024	Allahabad	Deependra Chauhan Vs. Phool Kumari Chauhan And 4 Others	13/11/2025
216	CRIMINAL REVISION	2865	2025	Allahabad	Smt. Aarti Sharma Vs. State of U.P. and Another	13/11/2025
217	WRIT - A	2895	2023	Allahabad	Ashok Kumar Singh Vs. State Of U.P. And 2 Others	13/11/2025
218	WRIT - A	15805	2025	Allahabad	Aditya Dhanraj Ashok Vs. Vice Chairman Ghaziabad Development Authority Ghaziabad And Another	13/11/2025
219	WRIT - C	1002907	1997	Lucknow	Ram Khelawan Vs. Commissioner Faizabad Division And Others	13/11/2025
220	APPLICATION U/s 482	33705	2010	Allahabad	Chhotey Lal And Another Vs. State Of U.P.And Another	12/11/2025
221	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	10601	2025	Lucknow	Abhishek Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Home Lko. And Others	12/11/2025
222	FIRST APPEAL FROM ORDER	1298	2010	Allahabad	Nitin Kumar Tiwari Vs. Sunder Lal And Others	12/11/2025
223	FIRST APPEAL	389	2017	Allahabad	Punarvesh Chandra Upadhyay Vs. Dr. Preeti Agrawal And 2 Others	12/11/2025
224	SPECIAL APPEAL	981	2025	Allahabad	Umesh Chandra Pandey Vs. State Of U.P. And 4 Others	12/11/2025
225	SPECIAL APPEAL DEFECTIVE	430	2025	Lucknow	Vinay Mohan Vs. Nidhi Singh	12/11/2025
226	WRIT - A	13070	2025	Lucknow	Girish Chandra Tripathi Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Home Deptt. Lko. And 2 Others	12/11/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
227	WRIT - C	10403	2025	Lucknow	Mohammad Juned Khan Vs. Addl. Commissioner, Administration Iind, Devi Patan Mandal, Gonda And Others	12/11/2025
228	HABEAS CORPUS WRIT PETITION	963	2025	Allahabad	Muskan And Another Vs. State Of U.P. And 5 Others	11/11/2025
229	WRIT - A	16686	2025	Allahabad	Kamal Kant Dubey Vs. Union Of India And 6 Others	11/11/2025
230	WRIT - C	1001660	2003	Lucknow	Daya Ram Objection Filed Vs. State Of U.P.Through Collector Sitapur.	11/11/2025
231	WRIT - C	8433	2022	Allahabad	M/S Rita Singh Contractors And Another Vs. State Of U.P. And 3 Others	11/11/2025
232	WRIT - C	29625	2025	Allahabad	Jakson Engineers Limited Vs. State Of Uttar Pradesh And 2 Others	11/11/2025
233	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	33908	2025	Allahabad	Krishna Alias Kishna Vs. State of U.P.	10/11/2025
234	CRIMINAL APPEAL	853	1983	Allahabad	Kali Shanker And Others Vs. State Of U.P.	10/11/2025
235	CRIMINAL APPEAL	787	1996	Allahabad	Shailendra Kumar Mishra Vs. State Of U.P.	10/11/2025
236	CRIMINAL APPEAL	1574	2012	Allahabad	Atarkali Vs. State of U.P.	10/11/2025
237	CRIMINAL REVISION	2128	2021	Allahabad	Aditya And Another Vs. State of U.P. and Another	10/11/2025
238	CRIMINAL REVISION	5396	2024	Allahabad	Inder Singh Rajpoot And 5 Others Vs. State of U.P. and Another	10/11/2025
239	JAIL APPEAL	2708	2012	Allahabad	Chandra Pal @ Rachit Vs. State Of U.P.	10/11/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
240	WRIT - B	42	2015	Lucknow	Tarawati And Anr. Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Revenue And 4 Ors.	10/11/2025
241	WRIT - C	27547	2022	Allahabad	Aligarh Muslim University And 2 Others Vs. State Of U.P. And 6 Others	10/11/2025
242	CRIMINAL APPEAL	9417	2023	Allahabad	Akh lakh Ahmad @ Ekhlakh Ahmad Vs. State Of U.P. And Another	7/11/2025
243	WRIT - A	10351	2025	Allahabad	Rekha Pal Vs. State Of U.P. And 2 Others	7/11/2025
244	WRIT - C	36027	2025	Allahabad	Smt. Sonam And Another Vs. State Of U.P. And 3 Others	7/11/2025
245	MATTERS UNDER ARTICLE 227	11806	2025	Allahabad	Om Prakash Singh Vs. Kalawati Devi And 12 Others	6/11/2025
246	WRIT - C	1001686	2004	Lucknow	M/S Century Laminating Company Ltd. Thru Deputy Manager Vs. Assessing Authority U.P. Pollution Control Board And Anr	6/11/2025
247	WRIT - C	10388	2019	Allahabad	Balwant Educational Society And 3 Others Vs. State Of U P And 3 Others	6/11/2025
248	WRIT - C	26058	2024	Allahabad	The Allahabad High School Society And Another Vs. State Of U.P. And 9 Others	6/11/2025
249	WRIT - C	35406	2025	Allahabad	Sharad Roshan Singh Vs. State Of U.P. And 3 Others	6/11/2025
250	WRIT - C	38168	2025	Allahabad	Sone Lal Vs. The Union Of India And 2 Others	6/11/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
251	MATTERS UNDER ARTICLE 227	4383	2024	Allahabad	Alok Kumar Jain Vs. Indra Bhushan Sawhney	4/11/2025
252	APPLICATION U/s 482	27200	2017	Allahabad	Riyaj Vs. State Of U.P. And 2 Others	4/11/2025
253	APPLICATION U/s 482	24989	2024	Allahabad	Ravi Pal Vs. State of U.P. and Another	4/11/2025
254	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	38294	2025	Allahabad	Sohrab Alias Sorab Ali Vs. State of U.P.	4/11/2025
255	WRIT - C	19813	2025	Allahabad	M/S Usha Filling Station Vs. Union Of India And 6 Others	4/11/2025
256	WRIT - C	4673	2025	Lucknow	M/S A.S.Traders Thru. Executive Partner Sri Rahul Singh Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Deptt. Of Public Works Lko. And 6 Others	4/11/2025
257	APPLICATION U/S 528 BNSS	42622	2025	Allahabad	Satendra Vs. State of U.P. and Another	3/11/2025
258	SPECIAL APPEAL DEFECTIVE	918	2024	Allahabad	State of UP and 3 others Vs. Yashank Khandelwal and 9 others	3/11/2025
259	WRIT - A	14111	2023	Allahabad	Sourabh Bhati Vs. State Of U.P. And 3 Others	3/11/2025
260	WRIT - A	15526	2025	Allahabad	Shanti Devi @ Sukh Devi Vs. State Of U.P. And 3 Others	3/11/2025
261	WRIT - C	6450	2022	Lucknow	Divine Heart Hospital And Research Centre Pvt.Ltd. Thru.Managing Director Dr.Ashok Kumar Srivastava Vs. State Of U.P. Thru. Its Prin. Secy. (Stamp And Registration) Lko. And 5 Others	3/11/2025
262	APPLICATION U/s 482	25387	2024	Allahabad	Asha Rathor Vs. State of U.P. and Another	31/10/2025
263	CRIMINAL APPEAL	2384	1986	Allahabad	Aaram Khan Vs. State	31/10/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
264	FIRST APPEAL FROM ORDER	3197	2016	Allahabad	Smt. Anju Verma And 2 Others Vs. Sameer Sharma And 2 Others	31/10/2025
265	FIRST APPEAL FROM ORDER	1915	2019	Allahabad	Suneeta Singh And 2 Others Vs. Poonam Gupta And 4 Others	31/10/2025
266	WRIT - A	23812	2003	Allahabad	Anjani Kumar Singh Vs. State Of U.P. Thru Principal Secy. Forest U.P. And Ors.	31/10/2025
267	CRIMINAL APPEAL	6805	2019	Allahabad	Sukh Lal Bunkar And Anr. Vs. State Of U.P.	30/10/2025
268	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	3996	2025	Allahabad	Parul Budhraja And 3 Others Vs. State Of U.P. And 3 Others	30/10/2025
269	FIRST APPEAL FROM ORDER	1523	2019	Allahabad	Smt. Geeta Devi And 9 Others Vs. Shri Ram General Insurance Company Ltd. And 2 Others	30/10/2025
270	FIRST APPEAL FROM ORDER	2520	2025	Allahabad	Regional Manager, Magma Hdi General Insurance Company Ltd. Vs. Sanjay Kumar And 2 Others	30/10/2025
271	PUBLIC INTEREST LITIGATION (PIL)	813	2025	Allahabad	Samir Kumar Banerji and 10 others Vs. State of U.P. and 8 others	30/10/2025
272	WRIT - A	14825	2018	Allahabad	Ajeet Singh Vs. State Of U.P. And 5 Others	30/10/2025
273	WRIT - A	7665	2022	Allahabad	Mohammad Sajid Khan And Another Vs. State Of U.P. And 5 Others	30/10/2025
274	APPLICATION U/s 482	4638	2021	Lucknow	Ayushi Mishra Vs. State of U.P. and Another	29/10/2025
275	APPLICATION U/s 482	5376	2021	Lucknow	Rajesh Kumar Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Home. Lko And Another	29/10/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
276	APPLICATION U/s 482	2818	2022	Lucknow	Brijesh Kumar @ Brijesh Kumar Kashyap Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Home And Another	29/10/2025
277	CAPITAL CASES	7	2019	Allahabad	Mohd. Sharif @ Suhail @ Sazid @ Anwar @ Ali Vs. State Of U.P.	29/10/2025
278	FIRST APPEAL FROM ORDER	3471	2010	Allahabad	New India Assurance Co. Ltd. Vs. Dashrath Lal Kesarwani And Others	29/10/2025
279	CRIMINAL APPEAL U/S 413 BNSS	600	2025	Allahabad	Ved Prakash Tyagi Vs. State of U.P. and Another	29/10/2025
280	WRIT - A	8831	2024	Lucknow	Siyaram Vs. Collector District Sultanpur And 2 Others	29/10/2025
281	WRIT - C	37053	2025	Allahabad	Marufa Begum Vs. Union Of India And 5 Others	29/10/2025
282	CRIMINAL REVISION	6331	2024	Allahabad	Smt Mili Nath Vs. State of U.P. and Another	28/10/2025
283	WRIT - A	7655	2019	Allahabad	Ganesh Tripathi And Another Vs. State Of U.P. And 3 Others	28/10/2025
284	WRIT - C	3000129	1998	Lucknow	Sher Bahadur Singh Vs. Addl. Commissioner Admn. Faizabad And Others	28/10/2025
285	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	5041	2025	Lucknow	Sunil Tiwari Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy./ Joint Secy. Prison Administration Reform Service U.P. And 6 Others	27/10/2025
286	FIRST APPEAL FROM ORDER	2459	2025	Allahabad	The New India Assurance Co. Ltd. Vs. Smt Jyoti And 5 Others	27/10/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
287	HABEAS CORPUS WRIT PETITION	913	2025	Allahabad	Sanny Kumar And Another Vs. State Of U.P. And 4 Others	27/10/2025
288	MATTERS UNDER ARTICLE 227	9445	2025	Allahabad	Smt. Santosh Jain And 2 Others Vs. Kewal Kishore And Another	17/10/2025
289	APPLICATION U/s 482	3900	2018	Allahabad	Laxmi Kant Pandey Vs. State Of U.P. And Another	17/10/2025
290	APPLICATION U/s 482	17331	2023	Allahabad	Smt. Heerawati And Another Vs. State Of U.P. And Another	17/10/2025
291	FIRST APPEAL FROM ORDER	2220	2025	Allahabad	National Insurance Company Limited, Through Its Branch Manager Vs. Smt. Sudha Kumari And 6 Others	17/10/2025
292	WRIT - A	10029	2025	Allahabad	Krishna Kant Vs. State Of U.P. And 2 Others	17/10/2025
293	WRIT - A	1738	2025	Allahabad	Anand Kumar Vs. Union Of India And Another	17/10/2025
294	WRIT - A	8388	2025	Allahabad	Committee Of Management Madarsa Arabiya Shamshul Uloom Sikariganj Ehata Nawab And Another Vs. State Of U.P. And 3 Others	17/10/2025
295	WRIT - C	4986	2005	Allahabad	Hatam Singh And Others Vs. State Of U.P. Thru Secy. Housing And Urban Planning And Anr.	17/10/2025
296	WRIT - C	15336	2018	Allahabad	Karmesh Kumar Srivastava Prop. Venus Trading Corpn. Vs. City Development Secretary And 5 Others	17/10/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
297	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	7025	2025	Lucknow	Sushant Prashar @ Sushant Parashar Vs. Central Bureau Of Investigation Thru. Cbi/ Acb Lko.	16/10/2025
298	CRIMINAL APPEAL	1054	2016	Allahabad	Ram Singh Alias Ram Singha Alias Ram Singhwa And Anr Vs. State Of U.P.	16/10/2025
299	CRIMINAL APPEAL	1334	2025	Allahabad	Vijay Kumar Verma Vs. State of U.P.	16/10/2025
300	FIRST APPEAL FROM ORDER	1880	2025	Allahabad	The New India Assurance Company Limited Vs. Smt. Sangeeta Devi	16/10/2025
301	WRIT - A	34651	2018	Lucknow	Devendra Pratap Singh Vs. State Of U.P Thru Prin Secy Consumer Protection And Ors	16/10/2025
302	WRIT - A	9462	2025	Allahabad	Navodaya Vidhyalaya Samiti and 2 others Vs. Pundarikaksh Dev Pathak and another	16/10/2025
303	WRIT - B	2774	2025	Allahabad	Ravendra Singh Vs. State Of U.P. And 4 Others	16/10/2025
304	WRIT - C	1000182	1998	Lucknow	Pyarey Lal And Others Vs. Addl. Commissioner Lucknow And Others	16/10/2025
305	MATTERS UNDER ARTICLE 227	3791	2025	Allahabad	Jagdish Prasad Vs. Pandit Ram Shanker Mishra Trust	15/10/2025
306	APPLICATION U/s 482	7276	2009	Allahabad	Jamaluddin @ Jamal Vs. State of U.P. and Another	15/10/2025
307	CONTEMPT APPLICATION (CIVIL)	2916	2025	Allahabad	Harsh Vardhan Vs. Sri Rahul Pandey, The District Magistrate	15/10/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
308	CRIMINAL REVISION	4289	2024	Allahabad	Sanjeev Sahu Alias Munna Vs. State of U.P. and Another	15/10/2025
309	FIRST APPEAL FROM ORDER	2422	2025	Allahabad	Mahesh Kumar And 3 Others Vs. Omaira Buildcon Proprietor Lalit Gogia	15/10/2025
310	WRIT - C	30137	2023	Allahabad	Logix Buildwell Private Limited Vs. State Of U.P. And 2 Others	15/10/2025
311	WRIT - C	1270	2025	Allahabad	Km Bhavna And Another Vs. Union Of India And 2 Others	15/10/2025
312	WRIT - C	26529	2025	Allahabad	Ramashankar Yadav And Another Vs. Union Of India And 3 Others	15/10/2025
313	WRIT - C	29560	2025	Allahabad	Dambar Singh And Another Vs. State Of U.P. And Another	15/10/2025
314	WRIT - C	35952	2025	Allahabad	Mukesh Singh Vs. State Of U.P. And 3 Others	15/10/2025
315	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	13193	2025	Allahabad	Asha Vs. State Of U.P.	14/10/2025
316	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	19170	2025	Allahabad	Vikas Kanjad Vs. State Of U.P.	14/10/2025
317	FIRST APPEAL FROM ORDER	4377	2018	Allahabad	United India Insurance Co. Ltd. Vs. Shanti Devi And 6 Others	14/10/2025
318	FIRST APPEAL FROM ORDER	2393	2025	Allahabad	Shriram General Insurance Company Ltd. Vs. Smt. Yashoda And 5 Others	14/10/2025
319	SPECIAL APPEAL DEFECTIVE	345	2025	Lucknow	State Of U.P. Thru. Secy. Secondary Education U.P. Lko. And Another Vs. Ram Nayan Yadav And 2 Others	14/10/2025
320	PUBLIC INTEREST LITIGATION (PIL)	542	2025	Allahabad	Girja Shankar Vs. State Of U.P. and 3 others	14/10/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
321	WRIT - A	11824	2025	Allahabad	Akhilesh Kumar Mishra Vs. State Of U.P. And 2 Others	14/10/2025
322	WRIT - A	15148	2025	Allahabad	Ray Singh Vs. Chief Secretary, Government Of U.P. Lucknow And 2 Others	14/10/2025
323	WRIT - C	3000153	1998	Lucknow	Devendra Nath Tandon And Others Vs. State Of U.P. And Others	14/10/2025
324	WRIT - C	13994	2023	Allahabad	Savita Yadav Vs. State Of U.P. And 3 Others	14/10/2025
325	WRIT - C	33632	2024	Allahabad	Regional Stressed Asset Recovery Branch Bank Of Baroda Vs. State Of Up And 9 Others	14/10/2025
326	APPLICATION U/s 482	15302	2018	Allahabad	Bhavesh Singh And 5 Others Vs. State Of U.P. And Another	13/10/2025
327	FIRST APPEAL FROM ORDER	2387	2025	Allahabad	United India Insurance Company Limited Vs. Rocky And Another	13/10/2025
328	APPLICATION U/S 528 BNSS	39561	2025	Allahabad	Karamavir Vs. State Of U.P. And Another	13/10/2025
329	WRIT - C	5107	2023	Allahabad	Mahesh Chandra Tiwari And 4 Others Vs. State Of U.P. And 3 Others	13/10/2025
330	CRIMINAL REVISION	3690	2025	Allahabad	Ayush Shukla Vs. State Of U.P. And Another	10/10/2025
331	FIRST APPEAL FROM ORDER	4129	2011	Allahabad	The New India Assurance Co. Ltd. Vs. Smt. Vidya Devi Alias Masnahi And Others	10/10/2025
332	SPECIAL APPEAL	192	2025	Lucknow	Shashank Sachan Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Basic Education Lko And 3 Others	10/10/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
333	SPECIAL APPEAL	304	2025	Lucknow	Rakhi Jaiswal And 4 Others Vs. C/M Ramkali Balika Inter College Thru. Its Manager And 5 Others	10/10/2025
334	WRIT - A	35723	2007	Allahabad	Shaukat Ali Siddiqi Vs. C/M Chasmai Rahmat Oriental College And Others	10/10/2025
335	WRIT - A	66090	2013	Allahabad	Jawahar Lal Verma And 32 Ors. Vs. State Of U.P. And 2 Ors.	10/10/2025
336	WRIT - A	11401	2025	Lucknow	Kuldeep (Constable , Pno-11249338) Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. Deptt. Of Home Lko. And 3 Others	10/10/2025
337	WRIT - C	34412	2025	Allahabad	Rahimuddin Vs. Union Of India And Another	10/10/2025
338	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	33358	2025	Allahabad	Neeraj Kumar Vs. State of U.P.	9/10/2025
339	CRIMINAL REVISION	3622	2021	Allahabad	Rishi Pal And Another Vs. State of U.P. and Another	9/10/2025
340	FIRST APPEAL FROM ORDER	2342	2025	Allahabad	United India Insurance Company Limited Vs. Ishani And Another	9/10/2025
341	WRIT - A	11729	2025	Lucknow	Preeti Devi Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. Deptt. Of Child Development And Nutrition Lko. And 6 Others	9/10/2025
342	WRIT - C	23107	2025	Allahabad	Committee Of Management Of Public Inter College Kerakat District Jaunpur And Another Vs. State Of U.P. And 2 Others	9/10/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
343	WRIT - C	35385	2025	Allahabad	Ramautar @ Ramavtar Vs. State Of U.P. And 4 Others	9/10/2025
344	APPLICATION U/s 482	1777	2022	Lucknow	Virendra Tiwari And Others Vs. State Of U.P. Thru. Addl. Chief Secy. Prin. Secy. Deptt. Of Home, Civil Sectt. And Another	8/10/2025
345	CRIMINAL REVISION	2206	2015	Allahabad	Maiyya Deen Vs. State Of U.P.	8/10/2025
346	CRIMINAL REVISION	5898	2024	Allahabad	Gaurav Gupta Vs. State Of U.P. And 2 Others	8/10/2025
347	FIRST APPEAL FROM ORDER	1790	2025	Allahabad	Pramod Kumar And 5 Others Vs. Sheeshram And 11 Others	8/10/2025
348	FIRST APPEAL FROM ORDER	2339	2025	Allahabad	National Insurance Co. Ltd. Vs. Smt. Sunita And 4 Others	8/10/2025
349	FIRST APPEAL	433	2017	Allahabad	Piyush Parihar Vs. Manuii @ Munnii Devi And Another	8/10/2025
350	WRIT - C	1000983	1995	Lucknow	Smt. Shubratn Vs. Chief Controlling Revenue Authority/Commissioner Lko And Ors	8/10/2025
351	WRIT - C	1002036	2003	Lucknow	Hanif Khan And Others Vs. Additional Commissioner Lucknow And Others	8/10/2025
352	WRIT - C	16125	2018	Lucknow	U.P. Rajya Nirman Sahakari Sangh Limited Vs. Union Of India Min.Of Finance Dept.Of Revenue Thru.Secy.Andors	8/10/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
353	CONTEMPT APPLICATION (CIVIL)	5703	2025	Allahabad	M/S Shanti Enterprises Vs. Smt Mala Srivastava, In Charge Additional Chief Secretary, Department Of Geology And Mining	7/10/2025
354	CRIMINAL MISC. WRIT PETITION	9457	2025	Lucknow	Ram Jivan Vs. State Of U.P. Thru. Secy. Home Deptt. Lko. And 3 Others	7/10/2025
355	FIRST APPEAL	382	2016	Allahabad	Roop Narain And Others Vs. State Of U.P. And Another	7/10/2025
356	FIRST APPEAL	130	2025	Lucknow	Dr. Madhu Singh Chaudhary Vs. Dr. Atul Bharti	7/10/2025
357	FIRST APPEAL	442	2025	Allahabad	Pratap Singh (Since Deceased) And 10 Others Vs. Ravneet Singh And 54 Others	7/10/2025
358	APPLICATION U/S 528 BNSS	23347	2025	Allahabad	Keshav Kumar Alias Kalu And Another Vs. State of U.P. and Another	7/10/2025
359	WRIT - A	12309	2025	Allahabad	Amit Kumar Pandey Vs. Uttar Pradesh Gramin Bank And Another	7/10/2025
360	WRIT - C	18378	2019	Allahabad	Ram Pratap And 2 Others Vs. State Of U.P. And 2 Others	7/10/2025
361	WRIT - C	22211	2024	Allahabad	Sanjay Kumar Singh Vs. State of U.P. and Another	7/10/2025
362	APPLICATION U/s 482	2300	2020	Allahabad	Rajeev Jain Vs. State Of U.P. And Anr	6/10/2025
363	CRIMINAL MISC. BAIL APPLICATION	33635	2025	Allahabad	Smt Ramwati Vs. State of U.P.	6/10/2025
364	FIRST APPEAL FROM ORDER	2081	2025	Allahabad	Mateswari Devi And Another Vs. Vidyakant Pandey And 2 Others	6/10/2025

S.No.	Case Type	Case Number	Case Year	Location	Party Name	Decision Date
365	FIRST APPEAL FROM ORDER	2119	2025	Allahabad	Chandra Pal Singh And 3 Others Vs. Dhoom Singh And Another	6/10/2025
366	SECOND APPEAL	723	2025	Allahabad	Tarkeshwar Pandey Vs. Deena Nath Yadav And 6 Others	6/10/2025
367	PUBLIC INTEREST LITIGATION (PIL)	2923	2025	Allahabad	Manoj Kumar Singh Vs. State Of U.P. And 12 Others	6/10/2025
368	PUBLIC INTEREST LITIGATION (PIL)	2933	2025	Allahabad	Munni Lal @ Hari Sharan Vs. State Of Uttar Pradesh And 9 Others	6/10/2025
369	WRIT - A	4247	2019	Allahabad	Virendra Kumar Chaubey And 4 Others Vs. State Of U.P. Through Secretary Housing Urban Welfare Department, Lucknow And 2 Others	6/10/2025
370	WRIT - A	5134	2022	Lucknow	Surendra Narayan Singh Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Irrigation And Water Resources, Lko. And Others	6/10/2025
371	WRIT - A	3515	2023	Allahabad	Smt Sheela Dubey Vs. State of U.P. and others	6/10/2025
372	WRIT - B	5737	1978	Allahabad	Ram Raj Vs. Board Of Revenue And Others	6/10/2025
373	WRIT - C	9597	2025	Lucknow	Avani Paridhi Energy And Communications Pvt.Ltd.Thru. Authorized Signatory Shri Aditya Yadav Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Deptt. Of Environment Forest/Climate Change Lko. And 3 Others	6/10/2025

## चतुर्थ तिमाही 2025 (अक्टूबर से दिसंबर) के पूर्ण पीठ के निर्णयों की सूची

S.NO.	CASE TYPE	CASE NUMBER	YEAR	AT	PARTY NAME	DATE OF DECISION	JUDGMENT TYPE
1.	SPECIAL AP-PEAL	1236	2019	Allahabad	Satya Prakash Yadav And 2 Others Vs. State Of U.P. And 3 Others	18/12/2025	Final AFR
2.	WRIT - A	5469	2013	Lucknow	Narain Prasad Gupta And Ors. Vs. State Of U.P.Throu.Prin.Secy. Housing And Urban Planning And Ors.	2/12/2025	Interlocutory AFR
3.	WRIT - A	5483	2013	Lucknow	Vijay Singh Tomer Vs. State Of U.P.Thru Prin. Secy.Housing And Urban Planning And Anr.	2/12/2025	Interlocutory AFR
4	WRIT - A	4460	2013	Lucknow	Jai Prakash Sharma And 2 Others Vs. State Of U.P. Thru. Prin. Secy. Housing And Urban Planning And Another	2/12/2025	Interlocutory AFR

## सुवास प्रकोष्ठ के अन्य प्रकाशन

हम आशा करते हैं की **“न्यायाभा-न्याय की किरण”** के इस पंचम संस्करण ने अपेक्षानुसार आप विद्वान पाठकगण को न्यायिक क्षेत्र के संदर्भ में ज्ञानसंवर्धन की प्राप्ति कराई होगी।

इसी क्रम में, **“न्यायाभा-न्याय की किरण”** के साथ ही हमारे अन्य प्रकाशन आपके पठन हेतु उच्च न्यायालय की वेबसाइट पर उपलब्ध हैं।

### 1. ई-इलाहाबाद उच्च न्यायालय निर्णय पत्रिका (e-AHCR)

- क. इलाहाबाद उच्च न्यायालय के इतिहास के सारांश,
- ख. हिन्दी में अनुवादित इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय,
- ग. सर्वोच्च न्यायालय के हिन्दी में अनुवादित निर्णय,
- घ. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित ऐतिहासिक निर्णय।
- च. इलाहाबाद उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के न्यायालय द्वारा पारित हिन्दी में अनुवादित निर्णय / अंतिम आदेश
- छ. विभिन्न अधिनियम( हिन्दी में तथा हिन्दी में अनुवादित) और
- ज. एक निःशुल्क सर्व इंजन, जो दिए गए कीवर्ड के आधार पर न्यायालय के निर्णयों की खोज करता है, तथा मूल और इसके अनुवादित संस्करण दोनों के लिए कार्य करता है। साथ ही इसमें विभिन्न अन्य फ़िल्टर मानदंड जैसे वाद शीर्षक, माननीय न्यायमूर्ति का नाम, तटस्थ उद्धरण, आदि भी उपलब्ध हैं, और किसी भी प्रकार की खोज को मूल्यवान बनाते हैं।

2. ई पुस्तिका स्वरूप में ऐतिहासिक निर्णय के प्रथम अंक में चौरी चौरी मुकदमे में पारित इलाहाबाद उच्च न्यायालय का हिन्दी में अनुवादित निर्णय, द्वितीय अंक में केशव सिंह प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के हिन्दी अनुवाद तथा तृतीय अंक में स्वतंत्रता पूर्व ऐतिहासिक आगरा षडयंत्र प्रकरण में माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया गया है। इसके आगामी अंकों में अन्य ऐतिहासिक मुकदमों में पारित निर्णयों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जाएगा।

## न्यायाभा-न्याय की किरण संपादक मण्डल

श्री पवन कुमार शर्मा  
(एच.जे.एस.) निबंधक (न्या.)  
(कंप्यूटर)/(समिति के प्रस्तुतकर्ता अधिकारी)  
प्रधान संपादक

श्री विवेक श्रीवास्तव,  
संयुक्त निबंधक, सुवास प्रकोष्ठ, इलाहाबाद  
संपादक

श्री विनोद कुमार त्रिपाठी,  
अनुभान अधिकारी, सुवास प्रकोष्ठ, इलाहाबाद  
उप-संपादक

डॉ. अनुपम श्रीवास्तव,  
समीक्षा अधिकारी, सुवास प्रकोष्ठ, इलाहाबाद  
सह-संपादक

### पदेन सदस्य

श्री मनीष कुमार सिंह,  
समीक्षा अधिकारी, सुवास प्रकोष्ठ, इलाहाबाद

### विधि प्रतिवेदक

श्री आशीष कुमार, श्री कुणाल शाह, श्री पंकज अस्थाना, श्री ईश शरण, श्री कार्तिकेय सिंह, श्री श्रेयश श्रीवास्तव,  
सुश्री सोनाक्षी अरोरा

# सुवास प्रकोष्ठ के अन्य प्रकाशन

## न्यायाभा न्याय की किरण



## ई-पुस्तिका स्वरूप में ऐतिहासिक निर्णय





**न्यायाभा** - न्याय की किरण